समाज और नारी
(Society and Women)

समाज और नारी

(Society and Women)

मान चंद खंडेला

अरिहंत पब्लिशिंग हाउस
जयपुर

प्रकाशक
अरिहंत पब्लिशिंग हाउस
9, राजस्थान विश्वविद्यालय के सामने
जवाहर लाल नेहरू मार्ग,
जयपुर-302 004 (भारत)
फोन 515192, 519808

प्रथम संस्करण 2000

ISBN 81-7230-153-7

कम्प्यूटर सैटिंग
अतुल ऑन लाइन कम्प्यूटर्स
जयपुर-1

मुद्रक
आरोड़ा ऑफसेट प्रेस
दिल्ली-110092

अनुक्रमणिका

1

भारत में वाल-विवाह : कमजोरी या मजबूरी

स्वीडन, अमेरिका, जर्मनी व ब्रिटेन जैसे पश्चिमी समाजो मे विवाह संस्था तेजी मे दम तोड रही है। यह आँकडे हमारे सामाजिक मापदण्डों के आधार पर अविश्वसनीय ही है कि स्वीडन में विवाह पूर्व औसतन एक महिला दो से अधिक बार गर्भ धारण कर चुकी होती है, अमेरिका में बीस प्रतिशत स्त्री-पुरुष बिना विवाह के साथ-साथ रह रहे है, दो-तिहाई काली लडकियाँ 18 वर्ष की आयु से पूर्व ही गर्भवती हो जाती हैं, टीन एजर्स (12 वर्ष से कम) माताओ की संख्या कई लाखो में है, तलाक होना अति सामान्य व स्वाभाविक घटना माना जाता है, जबकि दूसरी ओर भारतीय समाज में विवाह, उसके बाद बच्चे व कम से कम एक पुत्र प्राप्ति को अभी भी अति अनिवार्य माना जाता है। इतना ही नहीं वाल-विवाह को कानूनी रूप से प्रतिबंधित व दण्डनीय बना दिए जाने के बावजूद इस कुप्रथा पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित नहीं किया जा सका है। ग्रामीण क्षेत्रों, पिछडे समाजों व गरीब परिवारों में आखा तीज के दिन हजारो की संख्या में ऐसे-ऐसे बच्चों को विवाह के बंधन में बाँध दिया जाता है जिन्होंने चलना व बोलना तक नहीं सीखा है। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति तो यह है कि यह सब कुछ पुलिस व सामान्य प्रशासन, समाज सुधारकों व जन प्रतिनिधियों की आँखों के सामने होता है। यह सही है कि कानून बना कर इस बुराई को रोकने का प्रयत्न उचित ही है, लेकिन सामाजिक जागरूकता व कानून की जानकारी बढ़ाये बिना कानून को यकायक शक्ति से लागू करने को व्यावहारिक नहीं बनाया जा सकता है। यह तथ्य हो चाहे कटु लेकिन है सत्य के करीब कि किसी भी सामाजिक बुराई का मुकाबला सार्थक रूप से कानून की तुलना में सामाजिक अभियानों, आंदोलनों व प्रचार से ही किया जा सकता है।

यह सब कैसे व कब किया जाए, यह जानने से पूर्व उन कारणो को जानना बहुत जरूरी है जो बाल-विवाह के लिए उत्तरदायी है। भारतीय संस्कृति एव परम्परानुसार बालिका व नारी की यौन सम्बन्धी शुद्धता को बहुत महत्त्व दिया गया है, यही कारण है कि लडकी के रजस्वला होने से पूर्व ही विवाह कर दिए जाने को आम माता-पिता अपना नैतिक व धार्मिक दायित्व मानते है। यह वह समय होता है जिसके बाद ही उसकी शारीरिक बनावट मे परिवर्तन व विकास होना प्रारम्भ होता है। यही कारण है कि तथाकथित शिक्षित, समझदार व विकसित समाजो मे भी लडकी की शादी अधिकाश मामलो मे 18 साल से पहले ही करने की कोशिश की जाती है। जब लडकी छोटी होगी तो लडका भी स्वाभाविक रूप से छोटा ही होगा। अपने बच्चो की शादी करना माता-पिता का नैतिक, धार्मिक ही नही बल्कि सामाजिक दायित्व माने जाने के कारण उनकी मानसिकता इस दायित्व से यथाशीघ्र मुक्त होने की होती है, क्योकि विगत मे ग्रामीण, गरीब व पिछडे समाजो मे व्यक्ति के सामने अपने भौतिक अस्तित्व को बचाए रखने की एक बहुत बडी समस्या रही है और मृत्यु से पूर्व हर माता-पिता इस दायित्व को पूर्ण करके ही ऊपर वाले के सामने प्रस्तुत होना चाहता है।

बाल-विवाह का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण व्याप्त गरीबी का है। गरीब व्यक्ति अपने बच्चो का बार-बार विवाह कर आर्थिक भार को वहन करने की स्थिति मे नही होता है, इसीलिए वह अपने अधिक से अधिक बच्चो का विवाह एक साथ करना चाहता है। यही कारण है कि अधिक बाल-विवाह सामूहिक रूप लिए होते है। उस समूह मे चाचा-ताऊ, बहन व दूसरे रिश्तेदारो के बच्चे होते है। इस सामूहिक बाल-विवाह का समारोह एक ही होता है, जिससे वित्तीय भार प्रति विवाह बहुत ही न्यूनतम हो जाता है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रो मे भी व्यापारियो, बडे कृषको व साहूकारो जिनकी आर्थिक स्थिति तुलनात्मक रूप मे अच्छी होती है अर्थात जो अलग-अलग शादिया करने का भार वहन कर सकते है, के यहाँ बाल-विवाह इतनी छोटी उम्र मे नही होते है। आर्थिक स्थिति के कारण ही ऐसे परिवारो का शैक्षणिक स्तर, सामान्य सोच व सामाजिक स्तर कुछ ऊँचा होता है। भारतीय समाज मे विवाह के

अवसर पर रिश्तेदारों को नहीं बुलाने, समाज के लिए प्रीतिभोज का आयोजन नहीं करने, आगंतुकों को भेंट आदि नहीं देने की कल्पना नहीं की जा सकती है, इसलिए इस दायित्व को हल्का करने का उपाय केवल बच्चों का सामूहिक विवाह करना ही रह जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों के बारे में यह केवल कहावत ही नहीं बल्कि हकीकत है कि वहाँ अधिकांश परिवारों में जितने खाते हैं उतने ही कमाते हैं। सरकार बाल श्रमिकों को प्रतिबंधित करने के कितने ही कानून बनाए व घोषणाएं करे, लेकिन ग्रामीण परिवारों में अभी भी उनका महत्वपूर्ण स्थान बना हुआ है। कृषि, पशु पालन व गृह कार्यों में उनका योगदान किसी भी रूप में वयस्कों से कम नही है। विवाह प्रथा से सामान्यतया इस योगदान पर विपरीत प्रभाव नही पडता है, क्योंकि विवाह के बाद भी लडकी मुकलावा होने तक अपने पिता के यहाँ ही रहती है और पारिवारिक बजट में अपना योगदान बनाए रखती है। यही स्थिति लड़के की होती है। विवाह के बाद भी उसका व परिवार का अतिरिक्त दायित्व महत्त्वपूर्ण रूप में नहीं बढता है। वास्तविकता तो यह है कि विवाह किसी भी रूप में विशेष घटना नहीं बन पाती है, बल्कि एक प्रकार से दायित्व मुक्ति बिना लागत के ही हो जाती है, इसलिए विवाह नफे का सौदा समझा जाता है।

इस कटु यथार्थ के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करना बेकार है कि अभी भी सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में जमीदारों, स्थानीय राजनीतिज्ञों, निजी सेना के मालिकों, जाति विशेष के सरदारों व अन्य असामाजिक तत्वों से जवान बेटी की इज्जत बचाए रखना मुश्किल बना हुआ है। इस कारण से भी सामान्य व्यक्ति अपनी लड़की की शादी समय पूर्व करने को मजबूर हो जाता है, क्योंकि उसकी निगरानी के लिए परिवार का कोई भी बडा व्यक्ति कमाई के चक्कर में घर पर रह ही नहीं पाता है। विशेष रूप से कृषि मजदूरों के परिवारों में यह समस्या अधिक गम्भीर है। दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ यह है कि एक बार किसी लड़की की 'इज्जत' चले जाने के बाद उसकी शादी होना तो बहुत दूर की बात है, उसका व परिवार का रहना तक मुश्किल हो जाता है, इसलिए ऐसे मजबूर परिवार दो बुराइयों में से शीघ्र विवाह की बुराई को ही अपनाते हैं।

इन कारणों के अलावा सामाजिक कुरीतियो, अशिक्षा, अस्वस्थ परम्पराओ, सामाजिक सुरक्षा व सुविधाओं का अभाव जैसे कारणों के प्रभाव को भी कम नही माना जा सकता है। अभी तक भी बडे परिवार की महत्ता, एक से अधिक पुत्रो की प्राप्ति व विवाह की अनिवार्यता जैसे सामाजिक बंधनों से हम मुक्त नही हो सके है। सामान्यतया प्रत्येक पिता अपनी छोटी से छोटी उम्र मे बडे से बडा पुत्र प्राप्त कर लेना चाहता है, जिससे उसकी खेती, व्यापार या अन्य कार्यो मे उसका हाथ बँटाने वाला मिल सके। इसी मानसिकता के कारण वह पुत्र के 21 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक का इन्तजार नही करना चाहता है। पुत्र को बुढापे का सहारा माना जाता है और दीन-हीन परिवारों मे बुढापा, आर्थिक तगी, मानसिक वेदना, अत्यधिक शारीरिक श्रम व सामाजिक उपेक्षा के कारण आता भी शीघ्र ही है।

बाल-विवाह के लिए उत्तरदायी इन कारणो का प्रतिकार करते हुए जब तक समाज मे प्रचार-प्रसार नही किया जाएगा, केवल कानून के डंडे से इस कुप्रथा पर प्रभावी नियन्त्रण लगाना कठिन ही है। प्रश्न उठता है कि जब परिवार नियोजन, प्रौढ शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा व उपभोक्ता आंदोलन का इतना प्रचार-प्रसार सरकारी स्तर पर किया जा सकता है तो कई सामाजिक बुराइयों की जड इस कुप्रथा के सम्बन्ध मे ऐसा क्यो नही किया जाता है ? इसका यह अर्थ बिल्कुल नही है कि कानून अपना काम करना बंद कर दे, लेकिन उससे भी अधिक आवश्यकता जागरूकता बढाने व रूढियो तथा उसके कारणो पर प्रहार करने की है, इसके लिए आर्थिक व गैर-आर्थिक प्रोत्साहनो, दूरदर्शन व आकाशवाणी जैसे प्रसार माध्यमो की सहायता, नुक्कड नाटक, कानून की जानकारी के साहित्य का वितरण, बाल श्रमिको पर लगाए प्रतिबधो का कडाई से पालन, सामाजिक सुरक्षा, उपायो का विस्तार, विवाह के पजीकरण की अनिवार्यता, वयस्को के सामूहिक विवाह समारोहों का विस्तार, आखा तीज जैसे विशेष अवसरो पर प्रशासनिक मशीनरी की उत्तरदायित्वपूर्ण मुस्तैदी की है। जरूरत इस मानसिकता को बदलने की है कि सालभर इसे हतोत्साहित करने के लिए कुछ न किया जाए न कि सिर्फ आखा तीज पर ही पूरी शक्ति वरतकर केवल प्रचार व अपनी फाइल बढिया बनाने के

लिए कुछ दिखावा कर दिया जाए। इस बुराई को वास्तव मे ही यदि जड-मूल से समाप्त करना है तो समाज, कानून, सरकार व प्रचार जैसे सभी स्तरो पर इसके मुकावले के लिए निरन्तर व प्रभावी कार्यवाही करने की जरूरत है। दोषी को दण्डित करने के साथ ही ऐसे प्रयत्न करने की आवश्यकता है जिससे दोष ही न हो। इसके लिए सामाजिक परिवेश, ग्रामीणो, उनकी मजबूरियों व आर्थिक स्थिति को समझने की जरूरत है, जिससे दिखावे के अलावा कुछ सार्थक किया जा सके।

❑❑❑

2

महिला की द्वितीय स्तरीय नागरिकता : कारण क्या ?

स्त्री-पुरुष समानता को लेकर पश्चिमी देशो मे वीमेन लिब नाम से जो आदोलन चला वह धीरे-धीरे समाप्त सा ही नही हो गया बल्कि स्वय महिला सगठनो द्वारा ही इसका विरोध किया जाने लगा, क्यो कि इस आदोलन से प्रभावित महिलाओ द्वारा ब्रा लेस पहनावा, शरीर प्रदर्शन की होड, सिगरेट व शराब का सेवन, नाइट क्लबो मे धमाचौकडी, बच्चो से बढती दूरियाँ, परिवारो की टूटन, अकेलेपन की पीडा, काम के दोहरे भार, एड्स जैसी भयानक बीमारी के विस्तार व विवाह प्रथा के प्रति घटते आकर्षण के अलावा समाज को कुछ भी नही दिया जा सकता। नारी को स्वतत्रता के नाम पर उसे मायूसी, भटकाव व खीज ही मिली। अब पश्चिमी नारियो का झुकाव पुन परिवार योग, सादगी व धर्म की ओर होने लगा है, जबकि भारत मे महिला सगठनो ने लिगीय सवेदीकरण व समानता के प्रश्न को जोर-शोर से उठाने का आदोलन चला रखा है। इसके लिए बिन्दी, माँग, मगलसूत्र, पायजेब व बिछुआ जैसे गहनो को पुरुष दासता का प्रतीक मानकर नकारने के आह्वान किए जा रहे है। पुरुषों से खाना बनाने, बच्चो को खिलाने, घर मे झाडू लगाने की अपेक्षाए हो रही है। बलात्कार की शिकार अविवाहित व सतानहीन महिलाओ से हीन भावो को त्यागने की अपील की जा रही है। नाम से पहले कुमारी या श्रीमती लगाने, पति के सर नेम को अपनाने, स्कूलो आदि मे बच्चो के नाम के साथ पिता का नाम लिखवाने आदि को पुरुष प्रधान समाज की विशेषता के रूप मे प्रचारित किया जा रहा है। प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा करके प्रगतिशील बना जा सकता है व नर-नारी के भेद को समाप्त किया जा सकता है ? इस प्रश्न का

उत्तर यदि सकारात्मक है तो क्या ऐसी समानता महिला विकास मे योगदान दे सकती है ? इन प्रश्नों पर चर्चा से पूर्व यह विचार करने की आवश्यकता है कि स्त्री-पुरुष असमानता या समाज में नारी की द्वितीय श्रेणी के आखिर कारण क्या हैं ?

यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि भारतीय समाज में पुरुष की तुलना मे नारी अधिक उत्पीडित, उपेक्षित, असहाय व कमजोर स्थिति में है तथा उसके किसी भी प्रकार के विकास, उठाव या प्रचार को पुरुष सहज रूप मे नहीं ले पाता है। उसकी मानसिकता हर हालत में नारी से कुछ अधिक प्रभावी, शक्तिमान व प्रचारित होने की होती है। दोनों ही पक्षों की इस स्थिति के लिए कई ऐतिहासिक, शारीरिक, जैविक, धार्मिक व सामाजिक कारण उत्तरदायी हैं, जिन पर प्रहार करके ही पुरुष की संकीर्ण व स्वार्थी तथा नारी की भीरू व परम्परागत मानसिकता को बदला जा सकता है। प्राय प्रत्येक भारतीय महाकाव्यों व धर्म ग्रन्थों में ऐसी समानता पर जोर ही नहीं दिया गया है, वल्कि नारी को दुर्गा, सरस्वती व लक्ष्मी के रूपों में शक्ति, विद्या व धन के क्षेत्रों में अग्रणी व अनुकरणीय भी माना है। इसी कारण से समाज में नारी नर की पूरक, नर-नारी जीवन रूपी गाडी के दो पहिये, घर का शृंगार नारी, पुरुष की सफलता के पीछे किसी नारी का हाथ होता है, जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं जैसी कहावतों का चलन हुआ है, लेकिन धीरे-धीरे नारी ढोर, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी व नारी पाँव की जूती के रूप में पहचानी जाने लगी। अब जब महिला संगठनों व प्रगतिशील कहलाने वाली नारियों द्वारा लिंग भेद की समाप्ति व महिला विकास की बातें व प्रयत्न किए जाते हैं तो पुरुषों द्वारा उन्हें घर फोड़नी, कुलक्षणी, अत्याधुनिक, कुंठाग्रस्त व्यावसायिक समाज सेविका जैसे शब्दों से सम्बोधित कर दूसरे तरीकों से उपेक्षित व उत्पीडित करने का प्रयास किया जाता है। कोई भी पुरुष इस तरह की सभा, सम्मेलनों व संगोष्ठियों में चाहे कुछ भी सकारात्मक कहे, लेकिन निजी जीवन में मजबूरियों को छोडकर परिवर्तन बहुत ही कम नजर आते हैं। आखिर क्यों ?

इस तथ्य को तथाकथित प्रगतिशील महिला पुरुष की तुलना में

शारीरिक रूप से कमजोर व सरल है। इसके लिए नारी शरीर की बनावट, जिस कारण से उसे मासिक धर्म व गर्भ धारण करने जैसी परेशानियाँ भुगतनी पडती है व अन्य जैविकी कारण उत्तरदायी है। इस निष्कर्ष की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि आज तक कोई भी ओलिम्पिक महिला खिलाडी रिकार्ड पुरुष खिलाडी की तुलना मे श्रेष्ठ नहीं रह सकी है। चाहे प्रशिक्षण की सुविधाएं दोनों को समान मिल रही हो। दूसरी ओर उसके कुछ अग इतने कोमल होते हैं कि एक औसत पुरुष से भी वह मुकाबला करने की स्थिति मे नही होती है, इसीलिए उसे अधकार, एकान्त व भीड-भाड वाले वातावरण से बचना पडता है। इसी कारण से उसे बचपन मे पिता, जवानी मे पति व बुढापे मे पुत्र का संरक्षण प्राप्त करना पडता है तथा पति परमेश्वर, राँड का सात खसम, पराया धन, दूधों नहाओ पूतो फलो जैसी कहावतो का सामना करना पडता है। इन सबसे मुक्ति तथा नारी को अबला मे सबला, भावुक से दृढ, निर्भर से स्वतत्र तथा मोहक से महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए उसके शरीर को पुष्ट व सगठित बनाने के गम्भीर प्रयास करने की आवश्यकता है। इस सदर्भ मे जूडो-कराटे, योग जैसी विद्याओ के महत्व को बढाना बहुत अधिक उपयोगी हो सकता है, क्योकि किसी भी पुरुष पर किसी भी नारी की शारीरिक श्रेष्ठता उसकी हीन भावना को तोडने का महत्वपूर्ण साधन हो सकता है।

पुरुष पर नारी की निर्भरता व उसके साथ किए जा रहे असमान व्यवहार का दूसरा महत्वपूर्ण कारण उसके आर्थिक स्वावलम्बन के कारण ही विवाह की अनिवार्यता, परिवार मे ही जीने की मजबूरी, पुत्र की प्राप्ति, पुरुष के साथ ही आवागमन, सम्मान के लिए शीलवान रहने जैसी सीमाओ से नारी बाहर निकल रही है। यह अलग बात है कि इसी कारण से नारी मे सिगरेट व शराब पीने, ड्रग्स का नशा करने, स्वच्छद जीवन जीने जैसी बुराइयाँ तेजी से घर कर रही है। भारत मे भी लिगीय सवेदीकरण व महिला विकास के लिए नारी का आर्थिक स्वावलम्बन अति आवश्यक है। तब ही उससे स्वतत्र चिंतन व निर्णय तथा पुरुष से सहज व सकारात्मक भागीदारी की आशा की जा सकती है। इसके लिए सरकार को चाहिए कि वह महिलाओ को अधिक उत्पादक व लाभदायक व्यवसायो के लिए ऋण व अन्य सुविधाए प्रदान करे, जिससे वे

अपने परिवर्तन तथा अभिकर्ता की भूमिका अच्छी तरह से निभा सकें।

महिलाओं के पिछड़ेपन व पुरुष द्वारा उन पर दबदबे का एक महत्त्वपूर्ण कारण हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक परम्पराओं का दुरुपमुखी होना भी है। अशिक्षा व अज्ञानता के कारण इन परम्पराओं व रीति-रिवाजों को तोड़ना बहुत ही कठिन काम है, क्योंकि सामाजिक दबाव के कारण नारी चाहते हुए भी ऐसा नहीं कर पाती है और पुरुष चाहकर भी टूटती बेड़ियों के यथार्थ को सार्वजनिक रूप से स्वीकार नहीं कर पाता है। यदि करता भी है तो उसे भारी विरोध व उपहास का सामना करना पडता है। यह अनुभव लेखक को स्वयं राजधानी में लिंगीय सवेदीकरण एवं महिला विकास पर आयोजित सेमीनार में उस समय हुआ जब उसके द्वारा यह कहने पर कि उनकी पत्नी बिन्दी, माँग, पायजेब, चूड़ियाँ व मंगलसूत्र आदि की बेड़ियों में जकडी हुई नहीं है तो एक सहभागी धीरे से बुदबुदाया कि देखो अपनी अपनी कमजोरियों को गिनाया जा रहा है। प्रश्न उठता है कि यह सब करने पर ही नारी शीलवान व सौभाग्यवती क्यों मानी जाती है? निश्चय ही इसलिए क्योंकि पुरुष चाहे वह अनकमाऊ, निखट्टू व अज्ञानी ही क्यों न हो उसका प्रभुत्व बना रहे। तब ही तो समाज में ऐसा कोई बंधन पुरुष का नहीं है। नारी के विधवा या पुत्रहीन रहने में उसका दोष कुछ भी नहीं है तो फिर इन्हें अपशुकुनी मानना कहाँ का न्याय है? जबकि लूले, लँगडे, काने, बावन्ने, कँवारे, बेरोजगार, अनपढ, पागल आदि सभी प्रकार के लड़को को लड़कियों से वरीयता दी जाती है। धर्म की आड मे ही नारी को सती, शालीन व निर्मल बनाया गया है तथा भगवान के नाम पर उसे दासी, ब्रह्मचारिणी या ब्रह्मकुमारी बनने को मजबूर किया जाता है। शोषण के इन माध्यमों को शिक्षा के प्रसार से ही रोका जा सकता है।

कानून ने भी नारी को एक सीमा तक द्वितीय श्रेणी का दर्जा प्रदान किया है। शरियत कानून के नाम पर ही मुस्लिम महिलाएँ पर्दाप्रथा, व्यवसाय व खेल प्रतिबंध, तलाक, अनुबंध विवाह, पुरुष के लिए चार शादी की सीमा, एक ही कुल में विवाह, आधुनिक शिक्षा से दूरी जैसी बुराइयों से लबालब हैं। किसी भी बात पर कभी भी तलाक दे दिए जा सकने के कानून ने उन्हें पुरुष का गुलाम बनने को मजबूर कर रखा है। हिन्दू विवाह, उत्तराधिकार, संयुक्त

परिवार जैसे कानून भी पुरुषो के हितो की ओर ही ज्यादा झुके हुए हैं। एक सीमा तक ऐसी ही स्थिति बाकी सम्प्रदायो से सम्बन्धित कानूनों की है। इन सभी पुरुष प्रधान कानूनो पर काबिल व्यवस्था और उससे प्रभावित पुरुष की अहम्‌वादी प्रवृत्ति का बहुत अधिक प्रभाव पडा है। इन परिस्थितियों में सार्थक परिवर्तन कानून मे परिवर्तन करके ही लाए जा सकते हैं। नारी की इस परिस्थिति के लिए अशिक्षा, संगठन क्षमता व इच्छा शक्ति के अभाव, बडे परिवार का महत्त्व, घर के कामों को गौण स्थान, दरिद्रता व सम्प्रेषण सुविधाओ का अभाव जैसे कारण भी उत्तरदायी रहे है। चिन्तन नहीं बल्कि चिन्ता योग्य बात यह है कि समाज मे नारी को दूसरा दर्जा दिलवाने वाले इन कारणों को समय रहते पुरुष ने अपनी मानसिकता मे परिवर्तन कर दूर नहीं किया तो भारत में भी महिला आदोलन पश्चिम की तरह विकृत दिशा ले सकता है, जिसका नुकसान पुरुष, नारी व सम्पूर्ण समाज को भुगतना पड़ सकता है, क्योकि प्रसार माध्यमों ने दुनिया को इतना छोटा बना दिया है कि अब केवल भारतीय नारी ही सती-सावित्री जैसा व्यवहार हर प्रकार से रावण पुरुषों के सामने नही करती रह सकती है।

□□□

3

स्कूलों में यौन शिक्षा : अनावश्यक व अव्यावहारिक

शिक्षा प्रत्येक देश के हर क्षेत्र के विकास का आधार होती है और शिक्षा व्यवस्था का आधार होती है स्कूली शिक्षा । इस क्षेत्र में भी हमारी गिनती ससार के पिछड़े राष्ट्रों में ही है। इसका कारण स्कूल जाने वाले बच्चों के न्यून प्रतिशत के साथ ही व्यवस्था की विकृत, अव्यावहारिक व अनियोजित सोच भी है। स्कूली शिक्षा के सम्बन्ध में विगत वर्षों में जितने परिवर्तन हुए, आयोग बैठे और योजनाएँ बनी उनमें से अधिकांश निष्फल ही सावित हुई है । इसके उत्तरदायी कारण रहे है - अव्यावहारिकता, पश्चिमी प्रभाव व बोझिल पाठ्यक्रम। बच्चों के मानसिक स्तर की चिन्ता किए बिना शिक्षा के विकास के नाम पर उनके लिए पढाने की सामग्री बढाने का कोई मौका हम नहीं छोडते हैं। स्कूली शिक्षा में हम पता नहीं आर्ट एण्ड क्राफ्ट, कम्प्यूटर, प्राथमिक चिकित्सा, ट्रैफिक नियम, नैतिक शिक्षा आदि क्या-क्या शामिल करना चाहते हैं । इसके अलावा भी समय-समय पर बच्चों को उपभोक्ता संरक्षण, पंचायती राज, सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे विषयों पर शिक्षित करते रहते है। आजकल एड्स जैसी बीमारियों से मुकाबले के लिए स्कूलों मे यौन शिक्षा दिए जाने पर गम्भीरता से विचार किया जा रहा है। प्रश्न उठता है इसकी *कोई सार्थकता है ? इसी के साथ यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि क्या ऐसा करना* व्यावहारिक है ?

स्कूलों में यौन शिक्षा दिए जाने की सोच रखने वालों को कोई भी निर्णय लिए जाने से पूर्व भारत में सामाजिक परिवेश, चिन्तन के स्तर, शिक्षा

के ढाँचे, शिक्षक व शिक्षार्थी की स्वाभाविक मनोवृत्ति, जन सामान्य की आर्थिक स्थिति व सबसे महत्वपूर्ण - देश की जरूरत के सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार-विमर्श करना चाहिए। प्रथम प्रश्न तो यह ही उठता है कि यौन शिक्षा के माध्यम से हम बच्चों को क्या व क्यों बताना चाहते है ? यौन शिक्षा की विषय वस्तु निश्चय ही यौन अंगों, उनकी क्रियाओ व सम्बन्धो पर ही आधारित हो सकती है। इसका उद्देश्य बच्चो को यौन रोगों, भ्रान्तियों, सुरक्षित संभोग, प्रजनन प्रक्रिया आदि की वैज्ञानिक जानकारी देना ही हो सकता है, क्योंकि हमारे देश में भी अवयस्कों में फैल रही यौन प्रवृतियाँ, कुण्ठाएँ व असमर्थताएँ, स्वाभाविक होते विवाहेत्तर सम्बन्धों, वेश्याओं, कॉल गर्ल्स की बढ़ती संख्या, समलैंगिक सम्बन्धों की ओर बढ़ते रुझान ने समाज सुधारकों को चिंतित कर दिया है, लेकिन इन सब समस्याओं का हल स्कूलों में यौन शिक्षा में खोजना शायद हमारी सबसे बड़ी भूल है। प्रथमत: तो इस विचार पर हँसी आए बिना नहीं रह सकती है कि जिस देश की आधी जनसंख्या अक्षर ज्ञान से वंचित हो, एक-तिहाई को दोनो समय पेटभर खाना नहीं मिलता हो, तीन-चौथाई पौष्टिक आहार से वंचित हो तथा जहाँ शुद्ध पेयजल, छोटा-मोटा मकान, सामान्य सी चिकित्सा सुविधा व फिल्म देखना मिल जाने को बहुत बड़ी बात माना जाता हो वहाँ स्कूलों में औपचारिक यौन शिक्षा की सोचना बहुसंख्यक, पीडित, पिछड़ी व उपेक्षित जनसंख्या के 'जले पर नमक छिड़कने' जैसा ही है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि देश की एक-दो प्रतिशत जनसंख्या के अंग्रेजी बोलने, टी वी देखने, शराब पार्टियों में जाने व स्वच्छंद जीवन का ढोंग करने से सम्पूर्ण देश पश्चिमी प्रभाव वाला नहीं हो जाता है। अमेरिका, फ्रांस व जर्मनी जैसे देशों का वातावरण हमसे बिल्कुल भिन्न है। उन समाजों में साक्षरता शत-प्रतिशत, स्त्री-पुरुष सम्बधो की समानता, रूढ़ियों से मुक्तिपूर्ण और वर्जनारहित यौन सम्बधो की स्वाभाविकता है। सबसे महत्वपूर्ण है आधुनिकता वहाँ सोच में है, दिखावे में ही नहीं। वे जैसे दिखते है वैसे ही है और जैसे है वैसा ही दिखना चाहते है, जबकि हमारे समाज में आज भी बच्चो व बुजुर्गो में, माता-पिता व बच्चो में, शिक्षक व शिक्षार्थी में, महिला व पुरुष में दूरियाँ बहुत है। स्कूल का विद्यार्थी शिक्षक से तर्क-विपरीत लिंग साथी से वार्तालाप व सैक्स

पर बातचीत करने की मानसिकता विकसित नहीं कर सका है। ऐसे वातावरण में यौन शिक्षा कैसी दी व ली जा सकती है ? हमारा समाज तो अभी सहशिक्षा, स्वत विवाह, कुँवारी कन्या के सजने-धजने को ही बरदाश्त नहीं कर रहा है। विश्वविद्यालयों तक में लड़कियों के कामन रूम अलग होते हैं, लडकी अपनी माता से तो क्या भाभी तक से अपनी यौन सम्बंधी शंकाओं का समाधान नहीं कर सकती है। लडके-लड़की की मित्रता स्वीकार्य है ही नहीं। ऐसे सामाजिक वातावरण में कच्ची उम्र के बच्चों को औपचारिक यौन शिक्षा दिया जाना विकृतियों को जन्म देना ही है।

हमारे यहाँ शैक्षणिक वातावरण का भी यह हाल है कि शिक्षकों में से अधिकांश कुण्ठाग्रस्त, रूढ़िवादी व सैक्स को बुराई मानने वाले ही हैं। वे अभी भी गुरु अर्थात पूजनीय बने रहना चाहते हैं। उनसे अपनी उम्र से बहुत छोटे बच्चों से यौन शिक्षा के दौरान शिश्न, वीर्य, अण्डकोष, बीजाण्ड, डिम्बवाहिनी, प्रसव, सहवास जैसे शब्दों के प्रयोग की आशा नहीं की जा सकती है , तो फिर सूचनापूर्ण व लाभदायक यौन शिक्षा की आशा कैसे की जा सकती है ? जिन स्कूलों में सह-शिक्षा है वहाँ तो ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता है। ऐसा करने से लडके-लडकियों का कुछ सीखने के स्थान पर विकृत, उच्छृंखल व भोगी होने की सम्भावनाएं ही अधिक हैं, क्योंकि स्कूलों में तो क्या महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में भी लड़के-लडकियों में स्वाभाविक सम्बन्ध विकसित नहीं हो सके हैं। इतना ही क्यों राष्ट्रीय सेवा योजना के कार्यक्रम अधिकारियों (प्राध्यापकों) के सामने एड्स पर वीडियो फिल्म के माध्यम से जानकारी दी जाती है तो महिला अधिकारी कार्यशाला छोड़कर चली जाती हैं। ऐसे में छात्राओं से क्या आशा की जा सकती है ?

एक बार के लिए यह मान भी लिया जाए कि ऐसा करना सम्भव है तो दूसरा प्रश्न यह उठता है इसकी क्या वास्तव में ही जरूरत है। वास्तविकता तो यह है कि ऐसी शिक्षा की जरूरत तो वहाँ है जहाँ सैक्स को भोगना जीवन का लक्ष्य होता है, जबकि हमारी संस्कृति तो इससे दूर रहने पर जोर देती है और यदि ऐसा कुछ किया भी जाता है तो पूजा की तरह। जिस देश में विवाह को जन्मजन्मान्तर का बंधन मानने, पराई स्त्री को माँ या बहन की दृष्टि से देखने,

ब्रह्मचर्य व्रत को महाव्रत स्वीकार करने व कौमार्य को धरोहर समझने की परम्परा हो वहा सुरक्षित यौन क्रिया की शिक्षा देना एक साथ अतीत की परपराओ, वर्तमान की मर्यादाओ व भविष्य की सभी सम्भावनाओं को धता बताना है। ऐसी शिक्षा स्कूल स्तर पर प्रारम्भ करने का सीधा मतलब होगा 'खाओ, पीओ व मौज करो' की पश्चिमी विकृति को हम समाज में विकसित करना चाह रहे है। इसका मतलब होगा कि हम वेश्यागमन, यौनाचार व अप्राकृतिक सम्बन्धों के विरुद्ध वातावरण बनाने की शिक्षा दे ही नहीं सकते है। हमे समझना चाहिए कि ऐसी स्वीकारोक्ति चाहे वह परोक्ष ही सही हमारे समाज को पूरी तरह से बर्बाद करके रख देगी। आश्चर्य है जहाँ प्रारम्भिक शिक्षा तक सबको नसीब न हो, स्कूलों में शिक्षक नदारद रहते हो, अधिकांश स्कूलो मे खेल के मैदान, पीने के पानी, वाचनालय, ब्लैक बोर्ड, टाट-पट्टी तक की व्यवस्था नही हो, स्कूल की छत का मतलब आसमान हो व स्कूल में शिक्षण के अलावा सब कुछ होता हो वहाँ यौन शिक्षा दिए जाने की बाते की जाती है।

हमने स्कूलों मे धार्मिक क्राफ्ट, फर्स्ट एड, रेडक्रास, ए सी.सी., एन सी सी , एन.एस एस. जैसी शिक्षाएं देकर देख ली है। उसका परिणाम हमारे सामने है। किसी का कुछ भी लाभ तो हमे नही मिला है। तो फिर हम यौन शिक्षा के सम्बन्ध में ही इतने आशावादी क्यो है ? और फिर जब सामान्य शिक्षा प्रौढो को देकर हम अरबो रुपए खर्च कर रहे है तो उन्हे यौन शिक्षा के लायक क्यों नहीं समझते है। यह बोझ बेचारे बच्चो के माथे पर ही लादने का क्या मतलब है ? बच्चो को तो सामान्य शिक्षा दिए जाने की ही हम व्यवस्था कर दे तो उन्हे अन्य किसी प्रकार की शिक्षा औपचारिक रूप से देने की आवश्यकता ही नहीं है। हमे वास्तव में ही एड्स जैसी महामारियों से बचाव करना है तो यौन शिक्षा राष्ट्रीय राजमार्गों पर चलने वाले ट्रक ड्राइवरों, झुग्गी-झौपडियों के निवासियो, वेश्याओं, होस्टल मे रहने वाली लड़कियों व महिलाओं, सिनेमा जगत से जुडे कलाकारो, पॉस कॉलोनियों के निवासियों आदि को दी जानी चाहिए। जो वास्तव में ही इसके ज्ञान से वंचित ही नही है, बल्कि इसकी आवश्यकता भी उन्हे बहुत ज्यादा है।

इसी संदर्भ में उन कारणों पर प्रहार करने की जरूरत भी है, जिनके कारण युवाओं में यौन विकृतियाँ व आकर्षण बढ़ता जा रहा है। ऐसा यदि किया जा सकता है तो यौन शिक्षा को औपचारिक रूप से दिए जाने की आवश्यकता स्वत समाप्त हो जाती है। इसके लिए पारम्परिक शिक्षा को ज्यादा तर्कपूर्ण, उपयोगी व व्यावहारिक बनाने की जरूरत है, जिससे युवाओं को अनावश्यक कुण्ठाओं से बचाया जा सके, साथ ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्रता व उदारीकरण के नाम पर बढ़ रही स्वच्छंदता पर नियंत्रण लगाने की आवश्यकता भी है। टेलीविजन के बढ़ते चैनल, सस्ते व उत्तेजक साहित्य, कामुकतापूर्ण फिल्मों व वीडियो कैसिटों, शराब की सहज उपलब्धि ने युवाओं को केवल सैक्सी बना कर रख दिया है। उनके उन्माद को यौन शिक्षा से सहज व दोषरहित नहीं बनाया जा सकता है। इसके लिए तो इन सब कारणों को नियमित व नियंत्रित करने की आवश्यकता है। इन सबके चलते यौन शिक्षा की औपचारिक कोशिश करना उन्हें त्रिशंकु बनाना ही होगा किसी लायक बनाना नहीं।

निष्कर्ष यह ही है कि भारतीय परिस्थितियों में स्कूलों में यौन शिक्षा दिया जाना सैद्धान्तिक दृष्टि से भले ही उचित ठहरा दिया जाए, लेकिन यह व्यावहारिक बिल्कुल नहीं है, क्योंकि हम मानसिक, सामाजिक व आम वातावरण किसी भी दृष्टि से इसके अनुरूप नहीं हैं, इसलिए अच्छा यही है कि 'चौबे जी छब्बे जी बनने चले थे व दुब्बे जी ही रह गए' की कहावत को हम चरितार्थ होने का मौका ही नहीं दें।

□□□

4

महिलाओं पर बढते अत्याचार : दोषी पुरुष कम, महिला ज्यादा

यौन शोषण व महिला उत्पीडन का मामला जब भी अखबारों की सुर्खियो मे स्थान प्राप्त करता है महिला सगठन उसके विरोध मे आवाज उठाकर पुरुष प्रधान समाज को कोसने मे कोई कसर उठा कर नही रखते है तथा सरकार दोषियो को उनकी किसी प्रकार की हैसियत का ख्याल किए बिना दण्डित करने का विश्वास दिलाती है। इसके बाद होता कुछ भी नही है। भटेडी की भँवरी देवी व अजमेर फोटोकाण्ड से सम्बन्धित मासूम बालाओ की इज्जत लूटने वालो को आज तक सजा नही होना तो यही बताता है। कितना दुखद यथार्थ है कि हमारे आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और एक सीमा तक सामाजिक दृष्टि से विकास के साथ ही समाज मे बलात्कार, आत्महत्या व शोषण का आतक बढता जा रहा है। महिलाओ को यौन शोषण, मानसिक व शारीरिक उत्पीडन, दहेज व दुश्चरित्र जैसे बहानो के कारण होने वाले अत्याचार, रोज-रोज के झझटो से मुक्ति के उद्देश्य से की जाने वाली आत्महत्याएँ जैसी घटनाएँ बढती जा रही हैं। इसी के साथ भारतीय सस्कृति एव सस्कारो के विपरीत तलाक, पति व पत्नी के अलग रहने, विवाहेत्तर सम्बन्ध और कुँआरे मातृत्व का चलन असामान्य दर से बढ़ रहा है, जिसका अधिकाश मामलों में नकारात्मक प्रभाव कहा जाता है। यह प्रभाव महिलाओ पर ही अधिक पड़ता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या इन सबके लिए पुरुष ही दोषी है ? क्या केवल कानून बनाकर ऐसी समस्याओं का निदान किया जा सकता है ?

यह व्यग्य या कहावत भारत के सदर्भ मे आज भी बहुत सही है कि

महिला की सबसे बड़ी शत्रु महिला ही होती है। सास व ननद के अत्याचार आज भी भारतीय बहू की सबसे बड़ी समस्या है। अविवाहित तलाकशुदा व पति द्वारा छोड़ दी गई महिला पर पुरुष की कुदृष्टि हमेशा रहती है, लेकिन उसकी पीड़ा रुढ़ियों व परम्पराओं में सिमटी, थोथे अहंकार में डूबी व बेवजह जलन की शिकार महिलाएं ही कई गुना बढ़ाती रहती हैं। उनके तानों व बिना सिर पैर की अफवाहों व शंकाओं से ऐसी महिलाओं का जीना हराम हो जाता है। किसी विवाहित जोड़े के संतान नहीं होने के लिए स्त्री व पुरुष समान रूप से दोषी होते है, लेकिन निपुत्री, बाँझ व डायन जैसी गालियाँ महिला को ही सुननी पड़ती हैं। दुर्भाग्य से ऐसी वेदना भी महिलाओं द्वारा ही सर्वाधिक पहुँचाई जाती है। विधवा महिला को शादी, सगाई, मकान प्रवेश, जन्म दिवस, जलवा जैसे शुभ दिवसों पर शामिल नहीं होने देने, पति की मृत्यु के बाद कई दिनों तक एक कमरे में कोने में बैठने को बाध्य करने, उसके बाद रंगीन कपड़ों, बिन्दी, चूड़ियों, पायजेब, चुटकी आदि से वंचित करने के लिए महिला ही जिम्मेदार है। विधवा विवाह, बालिका शिक्षा तथा वयस्क होने पर ही विवाह को हतोत्साहित करने की अधिक दोषी महिलाएँ ही हैं। बालिका को पराये घर का धन व हर तरह से निकृष्ट पति को भी परमेश्वर मानने की प्रेरणा बल्कि बाध्यता व स्त्री घर की शोभा है की प्रेरणा महिलाओं द्वारा ही अधिक दी जाती है, जब किसी महिला के दिमाग में ऐसी भावना भर दी जाती है तो वह हर अत्याचार को सहन करने की आदत बना लेती है।

अलवर, अजमेर, जलगाँव या नाथद्वारा जैसे किसी भी सैक्स काण्ड को लिया जा सकता है, उसमें प्रत्यक्षत शोषण करने वाले तो पुरुष ही होते हैं, क्योंकि उनकी हरकतों को ही शोषण के अंतर्गत परिभाषित किया जा सकता है, लेकिन इसमें महत्वपूर्ण भागीदारी किसी महिला की ही होती है। अलवर सैक्स काण्ड में ही मुख्य अभियुक्त सुशीला शर्मा है, जिस पर लगाए आरोपों के अनुसार वह लड़कियों को फँसाने के लिए अपने पति से ही अपनी ही उपस्थिति में उनका शील भंग करवाती थी। वैसे भी राजनेताओं, बड़े अफसरों व धनिकों को महिलाएँ किसी महिला के माध्यम से ही परोसी जाती हैं। इस काम के लिए सरकारी नियंत्रण में चलने वाले महिला सदन, बालिका

अत्याधुनिक दिखाई भर देने, विलासितापूर्ण जीवन जीने, बिना कुछ किए ही बहुत कुछ प्राप्त कर लेने की भावना रहती है उसे शोषण से मुक्त नहीं किया जा सकता है। इसके लिए सरकार, प्रशासन, कानून व्यवस्था या पुरुष को दोषी ठहराते रहने से कुछ भी होने वाला नहीं है। अगर प्रत्येक महिला दूसरी महिलाओं को किसी प्रकार का नुकसान नही पहुँचाने, उनके विकास में आडे नहीं आने व सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने का प्रण कर ले तो परिस्थितियों में बहुत कुछ परिवर्तन लाया जा सकता है।

❑❑❑

5

भारतीय समाज में वहू का शोषण

संसार के सभी देशों की सरकारें अपनी जनता को शोषण से मुक्ति दिलवाने के लिए कोशिशें कर रही हैं। विश्व स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ मानव अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है। भारत मे भी स्वतंत्रता प्राप्ति के वाद समाज में व्याप्त शोषण को खत्म करने के लिए विभिन्न कानून वनाए गए। आपातकाल के दौरान वन्धुआ मजदूरी प्रथा की समाप्ति के लिए वडे कानून वनाए गए, लेकिन आश्चर्य है कि पिछले सैकडों-हजारों सालों से भारत में "वहू" पर जो अत्याचार हो रहे हैं उस पर सरकार का तो क्या किसी समाज सुधारक तक का ध्यान नहीं गया है।

भारत में समाज सुधारक केवल एक कार्य को व्यावहारिक रूप प्रदान कर दें तो हमारे समाज का आधारभूत परिवर्तन हो सकता है - यह है "सास-वहू" के रिश्ते को "माँ-बेटी" के रिश्ते में वदलना।

यदि हम हमारे समाज की गहराइयों में झाँकने की कोशिश करें तो वहुत ही दु:खदायी स्थिति सामने आती है। जो लड़की शादी से पहले अपने सुखमय भविष्य की कल्पनाओं में खोयी रहती है, शादी के वाद जव ससुराल में पहुँचती है तो उसे अपना ससुराल अपनी कल्पनाओं के अनुरूप ही लगता है। उसे लगता है जैसे हर व्यक्ति प्यार से उसे देख रहा है, उसकी सास मौहल्लेभर में वहू कीअच्छाइयों का गुणगान करती नहीं थक रही है, उसका पति इस तरह का आभास दिलाता है कि वह उसके विना एक मिनट भी नहीं रह पाएगा। वहीं वहू जव दूसरी वार ससुराल पहुँचती है तो उसे अपने सारे अरमान चकनाचूर होते नजर आते हैं। उसे अव वास्तविक सास का रूप देखने को मिलता है। दो

सदन या सरकारी सहायता प्राप्त महिलाओं से सम्बन्धित आवास गृह ज्यादा बदनाम है और एक सीमा तक उनकी बदनामी का पुख्ता कारण भी है, लेकिन हकीकत यह है कि उन सबकी अधीक्षिकाएँ प्राय शत-प्रतिशत मामलों में महिलाएँ ही होती है। वहाँ होने वाले काले कारनामे उन प्रशासनिक महिला अधिकारियो की जानकारी में ही नही बल्कि अधिकांश मामलों में उनकी सहमति व देखरेख मे होते है। भारत के हर छोटे-बड़े शहर ही नहीं बल्कि गाँवों तक मे वेश्यालय चल रहे है। जहाँ अबोध बालिकाओं से लेकर प्रौढ महिलाएँ करोडों की सख्या मे अनपे मन को मार कर तन का सौदा करती हैं। दुर्भाग्य से यह सब कुछ करवाने वाली बेरहम दिलवाली महिलाएँ ही होती है। ब्यूटी पार्लर, हॉबी सेन्टर्स, नृत्य शाला, जिमनेजियम, फैशन डिजाइन केन्द्र आदि की आड मे आजकल सम्भ्रान्त कहे जाने वाले घरों की लडकियाँ व महिलाएँ लाखो की संख्या में गर्म माँस के भेडियों तक पहुँच रही है, लेकिन उन्हें वहाँ तक पहुँचाने वाली कौन होती है ? दुर्भाग्य से कोई न कोई महिला ही। बम्बई, कलकत्ता व मद्रास जैसे बडे शहरो मे तो गर्म माँस की व्यापारी महिलाएँ उन पर ऐसी शारीरिक एव मानसिक रूप से पीडाएँ पहुँचाती हैं कि क्रूर पुरुष भी जिसकी कल्पना नहीं कर सकता है। दस वर्ष से भी कम उम्र की बालाओ, तपेदिक व एड्स जैसे भयकर रोगों की पीडितो, कोख में पाल रही बच्चे की माताओं तथा श्मशान की इतजार में बैठी वृद्धाओं को इस कार्य के लिए मजबूर करना किसी भी अत्याचार से ज्यादा ही है।

राजनीतिक दलों के महिला प्रकोष्ठों, महिला जागृति व उत्पीडन निवारण के काम मे लगे सरकारी सहायता के भूखे महिला संगठनों, निजी रूप से स्वदेशी या विदेशी सहायता से चल रहे विभिन्न प्रकार के आश्रम स्थलों के कार्यकलापो का बारीकी से अध्ययन किया जाए तो कुछ अपवादों को छोड़कर सभी की भूमिका सदिग्ध ही नजर आती है। ऐसी ही धारणा कार्यशील महिलाओं व छात्रा होस्टलों के सम्बन्ध मे है, जहाँ का सारा नियंत्रण महिलाओं के ही हाथ मे होता है। दुर्भाग्य से ऐसी धारणाएँ सभी मामलों में आधारहीन नही है। इस अवधारणा को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता है कि महिलाओं की महिलाओ द्वारा व महिलाओं के लिए कही जाने वाली ऐसी संस्थाओ या

संगठनों द्वारा ही महिलाओं का हर प्रकार का शोषण अधिक होता है। अन्तर केवल प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होने का है। पुरुष पर सामान्यतया यह आरोप लगाया जाता है कि वह महिला के आगे बढने के मार्ग में सबसे बडी बाधा है, लेकिन यह लांछन तो महिलाओं पर भी उतना ही सही उतरता है। किंतु यथार्थ तो यह है कि अंग्रेजी बोलना, आधुनिक पोशाक पहन व लच्छेदार भाषा में भाषण देने वाली हर तरह से सम्पन्न महिलाएँ समय गुजारने या अपने राजनीतिक भविष्य को सुधारने के लिए कुछ करती सी नजर आ रही है। उनका वास्तविक उद्देश्य पीडित, पिछड़ी, अशिक्षित, गरीब व रूढियों से ग्रस्त महिलाओं का उद्धार करना कम व समाचार माध्यमों में अपने नाम को उछालना अधिक होता है। तब ही तो सरकार द्वारा ऐसे संगठनों को अरबों रुपए वार्षिक की सहायता दिए जाने के बाद भी महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के समाचार अधिक से अधिक आते जा रहे हैं। एक तरह से ऐसी महिलाओं को टूल बनाकर कुछ वर्ग की महिलाओं ने अपने लिए बहुत कुछ प्राप्त करने का साधन बना लिया है। यह अनैतिकता व अवांछनीय कृत्य नहीं तो और क्या है ?

यौन शोषण व अन्य प्रकार के उत्पीड़नों के विरुद्ध आवाज उठाने, प्रदर्शनों, संगोष्ठियों व जुलूसों का आयोजन करने वाली आधुनिक महिलाओं को यह पता होना चाहिए कि सम्भ्रांत, पढ़ी-लिखी व उच्च सोसायटी की महिलाएँ विभिन्न कारणों से ऐसा शोषण व उत्पीड़न अति उत्साह या अपनी उच्चाकांक्षाओं के कारण स्वेच्छा से या बिना वजह के दबाव के कारण करवाती हैं। नौकरी में तुरन्त व अनुचित तरीकों से पदोन्नति प्राप्त करने, बिना कुछ किए पी.एचडी. पाने, किसी पद पर चयन करवाने, चुनावों में पार्टी टिकट या संगठन में पद प्राप्त करने, अपनी सुविधा की जगह तबादला करवाने जैसे कार्यों के लिए चाहे कुछ ही सही लेकिन महिलाएँ ही तो अनुचित तरह से अपने को समर्पित करती हैं। अपनी हैसियत से ज्यादा खर्चा करने, आधुनिक सोसायटी में स्थान बनाने, सिनेमा सीरियल एवं विज्ञापन फिल्म में जगह पाने, विलासिताओं से पूर्ण वस्तुओं तक पहुँच बनाने के लिए भी तो महिलाएं स्वैच्छिक रूप से ही कुछ अन्यथा होने देती हैं। इन सबके लिए कोई और नहीं केवल महिला जिम्मेदार होती है। जब तक उसमें समय से बहुत आगे बढने,

अत्याधुनिक दिखाई भर देने, विलासितापूर्ण जीवन जीने, बिना कुछ किए ही बहुत कुछ प्राप्त कर लेने की भावना रहती है उसे शोषण से मुक्त नहीं किया जा सकता है। इसके लिए सरकार, प्रशासन, कानून व्यवस्था या पुरुष को दोषी ठहराते रहने से कुछ भी होने वाला नहीं है। अगर प्रत्येक महिला दूसरी महिलाओं को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाने, उनके विकास में आड़े नहीं आने व सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने का प्रण कर ले तो परिस्थितियों में बहुत कुछ परिवर्तन लाया जा सकता है।

□□□

5

भारतीय समाज में बहू का शोषण

संसार के सभी देशों की सरकारें अपनी जनता को शोषण से मुक्ति दिलवाने के लिए कोशिशें कर रही हैं। विश्व स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ मानव अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है। भारत में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज में व्याप्त शोषण को खत्म करने के लिए विभिन्न कानून बनाए गए। आपातकाल के दौरान बन्धुआ मजदूरी प्रथा की समाप्ति के लिए बड़े कानून बनाए गए, लेकिन आश्चर्य है कि पिछले सैकडों-हजारों सालों से भारत में "बहू" पर जो अत्याचार हो रहे हैं उस पर सरकार का तो क्या किसी समाज सुधारक तक का ध्यान नहीं गया है।

भारत में समाज सुधारक केवल एक कार्य को व्यावहारिक रूप प्रदान कर दें तो हमारे समाज का आधारभूत परिवर्तन हो सकता है - यह है "सास-बहू" के रिश्ते को "माँ-बेटी" के रिश्ते मे बदलना।

यदि हम हमारे समाज की गहराइयों में झाँकने की कोशिश करें तो बहुत ही दुःखदायी स्थिति सामने आती है। जो लड़की शादी से पहले अपने सुखमय भविष्य की कल्पनाओं में खोयी रहती है, शादी के बाद जब ससुराल में पहुँचती है तो उसे अपना ससुराल अपनी कल्पनाओं के अनुरूप ही लगता है। उसे लगता है जैसे हर व्यक्ति प्यार से उसे देख रहा है, उसकी सास मौहल्लेभर में बहू कीअच्छाइयों का गुणगान करती नहीं थक रही है, उसका पति इस तरह का आभास दिलाता है कि वह उसके बिना एक मिनट भी नहो रह पाएगा। वहीं बहू जब दूसरी बार ससुराल पहुँचती है तो उसे अपने सारे अरमान चकनाचूर होते नजर आते हैं। उसे अब वास्तविक सास का रूप देखने को मिलता है। दो

पीढियो मे संघर्ष का प्रारम्भ यहीं से होता है। वर्तमान भारतीय हिन्दू समाज में उसी सास को "वास्तविक सास" का दर्जा मिलता है जो अपनी बहू को उन सब कार्यों को करने के लिए मजबूर कर दे जिन्हें वह करना नहीं चाहती है।

भारत मे (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो मे) बहू की सामान्य दिनचर्या में महत्त्वपूर्ण कार्य यह है - प्रात परिवार के सब सदस्यो से पहले उठना, पूरे परिवार के सदस्यो के लिए खाना बनाना, बच्चों व सास के कपडे धोना, सास व बच्चो को नहलाना, दिन मे या रात मे मोहल्ले या किसी भी स्थान से किसी बडी-बूढी के आने पर उसके पाँवो मे पडना, लम्बे घूँघट में रहना, किसी से न बोलना व रात को सबके सोने के बाद अपने पति के पास जाकर उसकी सेवा करना। शायद बन्धक मजदूर से भी इतने सारे कार्य इस प्रकार की परिस्थितियो मे नहीं करवाए जाते है, लेकिन इस बेचारी बहू की दयनीय दशाओं की ओर कौन ध्यान दे, क्योकि ऐसा करने पर भी कोई राजनीतिक लाभ प्राप्त होने वाला नहीं है।

विडम्बना देखिये ! जिस पति के लिए जिसने पिछले इतने वर्ष इन्तजार मे गुजार दिए है, उसे वह रात के 11 बजे बाद ही देख सकती है। यदि कोई बहू दिन मे 5 मिनट के लिए अपने परमेश्वर से मिलने की गलती कर लेती है तो उसे सास के तानो का सामना करने को तैयार हो जाना होता है। भारतीय समाज मे श्रेष्ठ बहू वह है जो अपने पति से कम से कम मिले, किसी परिचित या अपरिचित से बात न करे, दिनभर बैल या गधे की तरह घर का कार्य करे, अपने शरीर का बिल्कुल ध्यान न रखे व हर एक के द्वारा कोसे जाने पर भी अपने पीहर वालो के बारे मे एक शब्द का भी जवाब न दे व सबसे अन्त मे अपने किसी भी कष्ट का पता अपने परमेश्वर को भी न होने दे। प्रश्न उठता है इस प्रकार की श्रेष्ठता के मापदण्ड किसने निर्धारित किए है ? उसी रूढिवादी समाज ने जिसमे कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने बराबर होता देखना नहीं चाहता है - वह समानता चाहे आर्थिक हो, चाहे राजनीतिक, चाहे सामाजिक या चाहे धार्मिक। यही कारण है कि बहू के द्वारा किसी भी बात का विरोध किए जाने पर उसे ऐसा प्रत्युत्तर मिलता है कि उसका साहस हमेशा के लिए खत्म हो जाता है व उसकी आत्मा हर प्रकार के अत्याचारो को सहने को

मजबूर हो जाती है।

शहरी क्षेत्रों में बहुओं की दशा भी कुछ विशेष भिन्न नहीं है। कहने को तो यह कहा जाता है कि अशिक्षित व्यक्ति ही शोषण का शिकार अधिक होता है, लेकिन शहरों की शिक्षित बहुओं की दशा को यदि हम देखें तो यह कथन पूर्णतया असत्य साबित हो जाता है। बड़े-बड़े शहरों में हजारों की संख्या में शोषण का शिकार इस प्रकार की बहुएँ मिल जाएँगी जो शिक्षित होते हुए भी उसी प्रकार शोषित हैं। वे समाज के डर के कारण सब कुछ सहन कर लेती है। कहते हैं भारत में स्त्रियों का शोषण उनके आर्थिक परावलम्बन के कारण है, लेकिन उन बहुओं को हम क्या कहेंगे जो प्रतिदिन आदमी की ही तरह दफ्तर में 8 घंटे काम करने के बाद भी अपने घर के उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से उठाने पर मजबूर हों। हमारे समाज की व्यवस्था ऐसी है जिसमें बहू के होते घर का काम करना सास अपनी तौहीन समझती है। आश्चर्य तब होता है कि ऐसा व्यवहार करने वाली सास ही अपनी लड़की के साथ इस प्रकार का व्यवहार होता देखकर आग-बबूला हो जाती है व अपनी लड़की की सास से ऐसी अपेक्षा रखती है कि वह उसे पुत्री जैसा ही प्रेम व अपनत्व दे।

हमारे देश में पारिवारिक कुंठाओं को जन्म देने में सास के इस रिश्ते का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रत्येक सास केवल अपने अहम् की सन्तुष्टि के लिए पूरे परिवार में दुखों को जन्म देती है। एक पति जब कभी भी किसी भी बात के लिए अपनी पत्नी का पक्ष लेने की हिम्मत करता है तो उसे भी सामाजिक दृष्टि से परेशानी का सामना करना पड़ता है। अपनी माँ से ही इस प्रकार के ताने सुनने को मिलते है कि "जिस माता ने इसे पाल-पोष कर बड़ा किया उसे वह आज बिल्कुल भूल गया व जिस स्त्री के साथ इसका सम्बन्ध कुछ दिनों का है वह इसके लिए सब कुछ हो गई, कैसी जादूगरनी हमारे परिवार में आई ? इस प्रकार उसी सास के द्वारा पारिवारिक व सामाजिक वातावरण इस प्रकार का बना दिया जाता है जिससे एक पति चाहकर भी अपनी पत्नी के लिए कुछ नहीं कर सकता है। इस प्रकार पति-पत्नी के प्रेम पूर्ण सम्बन्धों में दूरियां बढ़ना प्रारम्भ हो जाती हैं व उनके वैवाहिक जीवन के आकर्षण खत्म हो जाते हैं। अब वे यांत्रिक प्राणियों की तरह जीने के लिए

मजबूर हो जाते है।

उस बहू की दयनीय दशा का आभास किसी सामान्य व्यक्ति को नही हो सकता, जिसने शादी के तीन-चार साल के अन्दर किसी बच्चे को जन्म नही दिया है। चाहे इसके लिए वह किसी भी रूप में दोषी न हो। माता समान सास से उसे बाँझ, कलमुँही जैसे असहनीय शब्दो को रात-दिन सुनना पडता है। ऐसी परिस्थिति मे सास पूरे मौहल्ले व गॉव में अपनी बहू की बुराइयों का प्रचार करना व हर गलत व सही कार्य के लिए उसे दोष देकर मानसिक वेदना पहुँचाना अपना अधिकार समझती है। इस प्रकार की बहू की जिन्दगी उस बन्धुआ मजदूर से भी बदतर होती है, जिसकी मुक्ति के लिए सरकार प्रयत्नशील है, लेकिन भारत के हर घर मे उपलब्ध इन बन्धुआ मजदूरो की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। इस प्रकार की वेदनापूर्ण व असहनीय परिस्थितियो मे जब वह अपना मानसिक सन्तुलन खो देती है तो ऐसा प्रचार किया जाता है कि उसे ऊपर का (भूत-प्रेत) कुछ हो गया है व इस चक्कर मे वास्तव मे उसे पागल बना दिया जाता है।

यह तथ्य हो सकता है कि अपने शरीर की गलत बनावट के कारण बाँझपन का दोष उसमे हो, लेकिन इस कार्य के लिए बहू को कैसे दोषी बताया जा सकता है कि उसकी कोख से लडके का जन्म नही होता है ? पुत्रहीन बहू को निपुत्री, मनहूस आदि कई विशेषणो से सम्बोधित किया जाता है व ऐसी स्त्री के खाने-पीने, हँसने, किसी से बोलने आदि सब ही अधिकार छीन लिए जाते है। सामाजिक परिस्थितियो के कारण उस बहू का पति परमेश्वर भी उसे ही दोषी बताकर उसके दुखों मे वृद्धि करता है।

दिखावे के समाज सुधार के कार्य को छोडकर वास्तविक कार्यों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता वर्तमान समाज सुधारकों के लिए है। व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक व्यक्ति इस बुराई को दूर करने मे अपना योगदान दे सकता है, क्योकि यह बुराई प्राय प्रत्येक घर मे किसी न किसी रूप मे अवश्य मिल जाती है।

□□□

6

शादी हो जब सादी : तब रुके बर्बादी

हमारे देश का ऐसा कोई राजनेता, राजनीतिबाज या समाज सुधारक नही है, जो हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त बुराइयों या रूढियों का विरोध भाषणों में न करता हो। ऐसी ही एक बुराई है शादी की भव्यता। शादी को सादी बनाने का प्रवचन हमे हर कहीं सुनने को मिल जाएगा, लेकिन प्रवचक के घर जब शादी होती है तो वह कितनी सादी होती है इससे हम सब पूर्ण रूप से परिचित हैं। किसी सभा, समारोह व आयोजन के अवसर पर भाषण देने का अवसर किसी राजनीतिज्ञ या धनी व्यक्ति को ही मिल सकता है। वह धनी व्यक्ति अपने घर में शादी होने पर पैसे की बर्बादी व धन का खुला प्रदर्शन जिस प्रकार करता है उससे स्पष्ट हो जाता है कि उसके पास पैसा गाढे पसीने की कमाई का नहीं है। पैसा यदि पसीने के बल पर कमाया गया है तो एक बारात के आगे दो या तीन बैंड नहीं हो सकते, हजारों रुपयों की आतिशबाजी नहीं की जा सकती, कई हजार रुपयों के मूल्य का इत्र बारातियों पर नहीं छिड़का जा सकता है। दस-बीस घोडे या पाँच-सात हाथी नहीं मँगाए जा सकते, हजारों बारातियों का स्वागत काजू व मुनक्का की थैलियाँ भेंट करके नही किया जा सकता। ऐसा करना किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला नही हो सकता। इससे पूरा समाज प्रभावित होता है। उसी समाज में एक गरीब व्यक्ति भी रहता है, जिसके पास भरपेट खाने को भी नहीं है। यदि वह अपनी लडकी या लडके की शादी सादगी से करना चाहता है तो समाज उसे ऐसा करने नहीं देता है। उसे ताने सुनने पडते हैं कि समाज का खाया है तो खिलाना भी पडेगा, धन दबा कर दीवाला बता रहा है, यह बारात क्या एक शवयात्रा लग रही थी

आदि। इन्हीं तानों के डर से बेचारा गरीब और गरीब व पीड़ित होने को मजबूर हो जाता है। ऋण लेता है व तथाकथित धनिकों की ''दादागिरी'' स्वीकार करने के लिए मजबूर हो जाता है।

प्रश्न उठता है - शादी को इतना वैभवपूर्ण बनाने का लाभ क्या है ? धनिकों के लिए तो इसका लाभ है। उन व्यक्तियों की व्यापारिक साख तो शादी में खर्च किए गए पैसे पर ही निर्भर करती है, इसीलिए एक धनी के लिए तो वैभवपूर्ण शादी ''बर्बादी'' के साथ ही साथ ''विनियोग'' भी हो जाती है, लेकिन इन धनिकों के चक्कर में जब एक सामान्य नौकरीपेशा व्यक्ति फँस जाता है तो मन को दुःख व खर्च करने वाले पर तरस आता है।

धन के नशे में मदहोश व्यक्तियों को तो छोड़िये, लेकिन समाज के सामान्य व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी लड़की या लड़के की शादी में बेकार की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए अपने पेट को काटकर जमा किए गए पैसे को गाजे-बाजे, आतिशबाजी, हाथी-घोड़ा या सैकड़ों व्यक्तियों के जीमण पर खर्च नहीं करे। उस पैसे को जो वर व वधू पक्ष के द्वारा ''बर्बाद' किया जाता, वर व वधू के नाम से बैंक में जमा करवा दे, जिससे उनका भविष्य कुछ निश्चित बनाया जा सके। इस परम्परावादी समाज में लड़की की कुछ इज्जत हो सके व लड़की के भावी अरमानों को पूरा करने की ताकत लड़के में आ सके, लेकिन परेशानी का कारण यह है कि हमारे समाज में तथाकथित बड़े लोग ऐसा नहीं होने देना चाहते। ऐसा होने से उनके अस्तित्व को सीधा खतरा उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि ऐसे लोगों का अस्तित्व तो समाज में अधिकतर लोगों के गरीब बने रहने पर ही बना रह सकता है। ऐसी परिस्थितियों में तथाकथित बड़े लोगों के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए गरीबों की बर्बादी हो जाने की अपनी परम्परा को अब त्यागना होगा व अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए शादी को सादी बनाना ही होगा। हो सकता है कि ऐसी शादी समाज के कर्णधारों की आँखों में कुछ समय के लिए खटके, लेकिन वर-वधू की जिन्दगी को बनाने में सहायक होगी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है। फिर हम चाहते भी तो वर-वधू की जिन्दगी को बनाना ही है। परम्परागत शादी के अवसर पर हजारों व्यक्तियों की भीड़ आखिर किसलिए जमा होती

है? वर-वधू के भावी जीवन में खुशहाली की कामना करने के लिए ही तो। जब हर एक की मनोकामना पूरी हो रही है तो किसी को भी ऐसी सादी शादी से विरोध आखिर क्यो होगा ? क्यों कोई ऐसी शादी से दु खी होगा ? फिर भी यदि होता है तो उसकी चिन्ता गरीब माता-पिता को नहीं करनी चाहिए। किसी भी माता-पिता का प्रथम कर्त्तव्य अपने पुत्र या पुत्री के लिए बनता है, समाज के लिए नहीं। फिर ऐसे समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य की चिन्ता आखिर क्यों की जानी चाहिए जो दुःखी को और अधिक दु खी देखकर प्रसन्न होता है?

शादी सादगीपूर्ण हो, यही हर व्यक्ति की भावना, कामना व क्रिया होनी चाहिए, तब ही वर-वधू को हम सच्चा आशीष दे सकते है।

□□□

7

नारी स्वतंत्रता : आंदोलन का यह कैसा स्वरूप ?

एक राजस्थानी कहावत है कि 'सत्तर साल मे तो कूल्डी (जहाँ गाँव भर का कूडा डाला जाता है) के भी दिन फिरते है। इसके लिए महिलाओ के सम्बन्ध मे चाहे इतनी ही दशाब्दियाँ लगी हो, लेकिन लगता है अब महिलाओ की स्थिति मे भी परिवर्तन अवश्यम्भावी सा हो गया है। पचायती राज व्यवस्था मे महिलाओ के आरक्षण, राज व्यवस्था मे उनकी बढती भूमिका, महिला सगठनो के फैलते जा रहे प्रभाव, महिला हितो के सम्बन्ध मे पिछले दिनो आए कानूनी बदलाव, पुलिस व सामान्य प्रशासन मे बढती जा रही उनकी भागीदारी और सबमे महत्वपूर्ण विचारो मे आ रहे व्यापक बदलाव से तो कुछ ऐसा ही लगता है। इस बदलाव के लिए सचार साधनो, साक्षरता के प्रतिशत मे हो रही वृद्धि, स्टार, एम व जी टीवी जैसे प्रसार माध्यमो, भौतिकवादी सस्कृति, सयुक्त परिवारो की टूटन, कार्यशील महिलाओ की बढती सख्या, महिला मतो को आकर्षित करने की राजनैतिक दलो की मजबूरी, नव-धनाढ्य एव उच्च-मध्यम वर्ग परिवारो की बढती सख्या, स्वर्गीय श्रीमती इदिरा गाधी जैसी महिलाओ की राजनैतिक हैसियत जैसे कई कारण उत्तरदायी रहे है।

आज ऊपरी तौर पर समाज मे महिलाओ का स्थान बनता सा नजर आने लगा है। आज पर्दाप्रथा, विधवा उत्पीडन, स्त्री निरक्षरता, कौमार्यता, बालिका विवाह, समाज व परिवार मे उपेक्षा, बेमेल विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसी समस्याएं उतनी भयानक नही रही है। एकल परिवार व्यवस्था ने महिलाओ को परिवार व समाज के सीमित दायरे से निकाला है। परिवर्तन की बयार सचार माध्यमो से ग्रामीण क्षेत्रो तक भी पहुँची है। अब हम कँवारी कन्या

द्वारा पायल व चुटकी पहनने, शृगार करने व फिल्मों की बातें करने, भावी पति के सम्बन्ध में विचार रखने, ससुर व जेठ से बतियाने, सबके सामने अपने ही पति से बातें करने को स्वीकार करने लगे है। मोहल्ले मे किसी पुरुष का सामना होते ही तुरन्त वहीं बैठ जाने, बालक - देवर से भी घूँघट निकालने, वृद्ध पुरुष के सामने से निकलते हुए चप्पलें हाथ मे लेकर चलने, पति की मृत्यु के बाद महीनों कमरे के एक ही कोने में बैठे रहने, निस्संतान औरत को शुभ कार्य में नहीं बुलाने, पिता की उम्र के पुरुष से शादी को मजबूर होने, कन्या पैदा होते ही उसे मार देने जैसी पीडादायक घटनाएँ तो अब अपवादस्वरूप ही होती हैं।

परिवार मे उसकी निर्णय क्षमता, अभिव्यक्ति के अवसरों, बच्चों पर अधिकार व प्रश्न करने की क्षमता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। एक आम पिता लडकी के साथ भेदभाव करने, उसे पढाई से वंचित करने, पैसे लेकर शादी करने, सार्वजनिक रूप से पिटाई करने, लडकी पैदा होने पर मातम मनाने, डंडे के जोर से बेमेल विवाह करने में झिझकने व हीनभावना महसूस करने लगा है। यही हालत कामचोर, शराबी व अनकमाऊ पति की भी है।

कामकाजी महिलाएं अब अपने सहकर्मियों को घर बुलाने, कमाई को अपने पास रखने, पति को गृह कार्य में सहभागी बनाने, प्रात देरी से उठने, इच्छा न होने पर काम से मना कर देने, पति के बिना सभा - सम्मेलनों में जाने, यूनियनबाजी करने सहित कई स्वतंत्र निर्णय करने की हकदार होती जा रही हैं। शहरी क्षेत्रों में महिला द्वारा स्कूटर या कार चलाना अब कौतूहल का विषय नहीं रहा है। कामकाजी महिलाएं अकेली रहने व यात्रा तक करने लगी हैं। प्रश्न उठता है कि क्या इसको ही हम महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन मान लें ? यदि यही परिवर्तन है तो क्या इससे संतुष्ट हुआ जा सकता है ? इस विषय पर विवेचना करने से पूर्व उन 'परिवर्तनों' की ओर भी दृष्टिपात करने की आवश्यकता है जो नारी स्वतंत्रता आंदोलन के नाम पर हो रहे हैं व पहले से अधिक नारकीय जीवन की परिस्थितियाँ पैदा कर रहे हैं।

नारी स्वतंत्र होने के स्थान पर स्वच्छंद और इसी कारण पहले से अधिक घुटन व भ्रमित महसूस कर रही है। अधिक आधुनिक प्रगतिवादी व स्वतंत्र

कही जाने वाली महिलाएँ सिगरेट व शराब पीने, नाइट क्लबों में जाने, अविवाहित रहने, जरा सी बात पर विवाह विच्छेद कर लेने, बच्चों से परहेज करने, शारीरिक श्रम से दूर रहने, स्वजनो से रिश्ते काट लेने, विवाहेत्तर सम्बन्धों की ओर प्रवृत्त होने, शारीरिक प्रदर्शन करने की मानसिकता से ग्रसित होती जा रही है। पुरुष व सरकार की हर बात मे दोष निकालना, सांस्कृतिक मूल्यों, प्राचीन परम्पराओ व सामाजिक रीति-रिवाजों की खिल्ली उड़ाना, हर काम मे पुरुष की बराबरी करना, हर संस्था मे महिला सगठन बना लेना, हर क्षेत्र में आरक्षण की माँग करना इनकी आदत सी हो गई है। अब तो स्थिति यहाँ तक आ गई है कि कुछ अति आधुनिक महिलाओ व उन्ही के संगठनों द्वारा धार्मिक ग्रथो का उपहास उड़ाने, विवाह व्यवस्था को नकारने, स्वच्छंद भाव से 'सबध' स्थापित करने, एक्सचेंज क्लबों का सदस्य बनने, नारी ही बच्चे पैदा क्यो करे जैसे प्रश्न उठाने, जैसी बाते भी सामने आ रही है।

यही कारण है कि फैन्टेसी व बी.एम एड्स जैसी स्वच्छद यौनाचार सस्कृति को बढ़ावा देने वाली पत्रिकाओ की प्रसार सख्या लाखों मे होती जा रही है। इनमे महिलाएँ भी हजारो रुपए व्यय कर उत्तेजक भाषा मे रति क्रियाओं के लिए 'उपयुक्त' पुरुष को आमंत्रित करने हेतु विज्ञापन देती है और मुद्रित विज्ञापनो का लाभ उठाती है। पॉश कही जाने वाली कॉलोनियो व ऊँचे माने जाने वाले परिवारो मे अश्लील फिल्मों को सामूहिक रूप से देखने, सम्मिलित रूप से भोग विलास करने, *उन्मुक्त वातावरण वाली शराब पार्टियों को आयोजित* करने, पति की आँखो के सामने ही दूसरो की बाँहो मे झूलने जैसी प्रवृत्तियाँ तेज गति से बढ रही है। क्या इन सब परिवर्तनो से नारी जाति प्रगति की ओर बढ रही है? निश्चय ही नही। अविवाहित, तलाकशुदा, परित्यक्ता व कँवारी माताओ की बढ़ती जा रही सख्या, छिन्न-भिन्न होते जा रहे परिवारों, बढ़ती जा रही अवैध सतानों, महिलाओं के लिए बन रही लाइट सिगरेटो की बढती बिक्री, बद होती जा रही रसोइयो, खुलते जा रहे फास्ट फूड सेन्टर व नाच गृहों को परिवर्तन तो मानना ही होगा, लेकिन प्रगति बिल्कुल नही।

तो फिर प्रश्न उठता है ऐसे परिवर्तन कौनसे है जिनसे प्रगति आ सकती है ? इसके लिए समस्या के मूल पर चोट करने की आवश्यकता है। नारी की

दुर्दशा, उत्पीडन, उपेक्षा व कष्टो के मुख्य कारण हैं। उसके पास राजनैतिक, प्रशासनिक, आर्थिक व बौद्धिक शक्ति की न्यूनता। इस न्यूनता को अधिकता और पर्याप्तता मे बदलकर ही सकारात्मक परिवर्तन किए जा सकते हैं। इस सम्बन्ध मे पचायती राज कानून को आदर्श मानकर ससद व विधानसभा सहित सभी बोर्डो, समितियो, सलाहकार परिषदो आदि मे महिलाओं को न्यूनतम तीस प्रतिशत आरक्षण देने की कानूनी व्यवस्था करने की आवश्यकता है। तभी अखिल भारतीय व राज्य स्तरीय प्रशासनिक, पुलिस व सामान्य नारी को विभिन्न बहानो से घर मे कैद करके रखने के स्थान पर उसे विधायिकाओ, दफ्तरो, कारखानों, व्यापार स्थलों, शोध सस्थानों, प्रशिक्षण केन्द्रों, नियोजन कार्यालयों, उच्च शिक्षण संस्थानों आदि में भेजने की आवश्यकता है। महिलाओं के विकास के लिए कानून बनाने से पूर्व उनके संगठनों से विचार-विमर्श नहीं करने, क्रियान्वयन में उनकी भागीदारी नहीं देने, सम्बन्धित अधिकारियो को दायित्वपूर्ण नहीं बनाने, उत्तरदायी अधिकारियों का निर्धारण समयान्तर मे प्रतिनिधि महिला संगठनों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार जरूरी नहीं बनाने, निर्धारित लक्ष्यों को पूरा नही करने को कार्य के प्रति लापरवाही नहीं मानने, लक्ष्यों के अनुसार राशि का आवंटन नहीं करने से महिला विकास होने वाला नहीं है।

महिला साक्षरता के लिए व्यापक व्यावहारिक व औपचारिक कार्यक्रम बनाकर तथा उसी के अनुरूप मानवीय व वित्तीय साधन उपलब्ध करवाकर एक साथ अज्ञानता, रूढिवादिता, संकीर्ण सोच व झिझक की मानसिकता के विरुद्ध लडा जाना आसान हो सकता है। निश्चय ही यह कार्य केवल सरकार पर निर्भर रहने, उसे दोषी ठहराते रहने या पुरुष प्रशासकों को कोसते रहने से पूरा होने वाला नही है। इसके लिए विशेष रूप से महिला संगठनों को आगे आकर इस महायज्ञ में अपनी क्षमता व योग्यतानुसार आहुति देने की आवश्यकता है। केवल समय गुजारने, प्रचारित होने व सरकारी मदद को हडपने के उद्देश्य से महिला संगठन चला रही कॉन्वेन्ट संस्कृति वाली पदाधिकारियों को भी समझ लेना चाहिए कि यह उद्देश्य केवल सभा, सम्मेलन, संगोष्ठी व कार्यशाला आयोजित कर समाचार पत्रों में खबर छाप देने मात्र से पूर्ण हो सकता है।

निष्कर्ष यही है कि महिला विकास का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब महिला संगठन स्वयं संगठित, समन्वित, सक्रिय व समर्पित हो। सरकार, कथनी व करनी के भेद को मिटाए व सामान्य प्रशासन कुण्ठाओं से रहित होकर कार्य करे, तभी हर परिवर्तन को विकास मानने की मानसिकता से दूर होकर वास्तविक विकास की परिस्थितियाँ पैदा की जा सकती है।

□□□

8

नारी जाति का विकास : क्या कुछ परिवर्तन पर्याप्त ?

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। लगता है इसी नियम के अनुसार अब महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी हो गया है। पचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के आरक्षण, राज व्यवस्था मे उनकी बढती भूमिका, महिला सगठनों के फैलते जा रहे प्रभाव, महिला हितो के सम्बन्ध मे पिछले दिनों आए कानूनी बदलाव, पुलिस व सामान्य प्रशासन में बढती जा रही उनकी भागीदारी और सबसे महत्त्वपूर्ण विचारों में आ रहे व्यापक बदलाव से तो कुछ ऐसा ही लगता है। इस बदलाव के लिए संचार साधनों, साक्षरता के प्रतिशत में हो रही वृद्धि, स्टार, एम व जी टीवी जैसे प्रसार माध्यमों, भौतिक्वादी सस्कृति, संयुक्त परिवारों की टूटन, कार्यशील महिलाओं की बढती सख्या, महिला मतो को आकर्षित करने की राजनैतिक दलों की मजबूरी, नवधनाढ्य एव उच्च-मध्यम वर्ग परिवारों की बढती सख्या, स्वर्गीय इंदिरा गाधी व जयललिता की राजनैतिक हैसियत जैसे कई कारण उत्तरदायी रहे हैं। आज ऊपरी तौर पर समाज में महिलाओं का स्थान बनता सा नजर आने लगा है। आज पर्दाप्रथा, विधवा उत्पीडन, स्त्री निरक्षरता, बालिका विवाह, समाज व परिवार में उपेक्षा, बेमेल विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसी समस्याएँ उतनी भयानक नहीं रही हैं। एकल परिवार व्यवस्था ने महिलाओं को परिवार व समाज के सीमित दायरे से निकाला है। परिवर्तन की हवा संचार माध्यमों से ग्रामीण क्षेत्रों तक भी पहुँची है। अब हम कैंवारी कन्या द्वारा लिपस्टिक लगाने, पायल व चुटकी पहनने, सजधज कर आने-जाने, फिल्मों की बातें करने,

भावी पति के सम्बन्ध मे विचार रखने, ससुर व जेठ से बतलाने, सबके सामने अपने पति से बाते करने, सहन करने लगे है। मोहल्ले मे किसी पुरुष के सामने मिलते ही तुरन्त वही बैठ जाने, बालक देवर से भी घूँघट निकालने, वृद्ध पुरुष के सामने से निकलते हुए चप्पलें हाथ मे लेकर चलने, पति की मृत्यु के बाद महीनो तक कमरे के एक ही कोने मे बैठे रहने, नि सतान औरत को शुभ कार्य मे नही बुलाने, पिता की उम्र के पुरुष से शादी को मजबूर होने, कन्या पैदा होते ही खुलेआम मार देने जैसी पीडादायक घटनाएँ तो अब अपवादस्वरूप ही होती है। परिवार मे उसकी निर्णय क्षमता, अभिव्यक्ति के अवसरो, बच्चो पर अधिकार व प्रश्न करने की क्षमता मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। एक आम पिता अब लडकी के साथ भेदभाव करने, उसे पढाई से वचित करने, पसे लेकर शादी करने, सार्वजनिक रूप से पिटाई करने, लडकी पैदा होने पर मातम मनाने, डडे के जोर से बेमेल विवाह करने मे झिझक व हीनभावना महसूस करने लगा है। यही हालत कामचोर, शराबी व अनकमाऊ पति की भी है।

कामकाजी महिलाएँ अब अपने सहकर्मियो को घर बुलाने, कमाई को अपने पास रखने, पति को गृह कार्य मे सहयोगी बनाने, पति के पहले सो जाने, प्रात देरी से उठने, इच्छा न होने पर काम से मना करने, पति के बिना सभा, सम्मेलनो मे जाने, यूनियनबाजी करने सहित कई स्वतत्र निर्णय करने की हकदार होती जा रही है। शहरी क्षेत्रो मे महिला द्वारा स्कूटर या कार चलाने और कौतूहल का विषय नही रहा है। कामकाजी महिलाएँ अकेली रहने व यात्रा करने लगी है। प्रश्न उठता है कि क्या इसको ही हम महिलाओ की स्थिति मे परिवर्तन मान ले। यदि यह ही परिवर्तन है तो क्या इससे सतुष्ट हुआ जा सकता है ? इस विषय पर विवेचना करने से पूर्व उन परिवर्तनो की ओर भी दृष्टिगत करने की आवश्यकता है जो नारी स्वतत्रता आन्दोलन के नाम पर हो रहे है व पहले से भी अधिक नारकीय जीवन की परिस्थितियाँ पैदा कर रहे है। नारी स्वतत्र होने के स्थान पर स्वच्छद और इसी कारण पहले से अधिक व घुटन व भ्रमित महसूस कर रही है। अधिक आधुनिक, प्रगतिवादी व स्वतंत्र कही जाने वाली महिलाए सिगरेट व शराब पीने, नाइट क्लबो में जाने, अविवाहित रहने, जरा सी बात पर विवाह विच्छेद कर लेने, बच्चो से परहेज

करने, शारीरिक श्रम से दूर रहने, स्वजनो से रिश्ते काट लेने, शरीर का खुला प्रदर्शन करने की मानसिकता से ग्रसित होती जा रही हैं। पुरुष की हर वात में दोष निकालना, सांस्कृतिक मूल्यों, प्राचीन परम्पराओं व सामाजिक रीतिरिवाज की खिल्ली उडाना, हर काम में पुरुष की वरावरी करना, हर संस्था में महिला संगठन वना लेना, हर क्षेत्र में आरक्षण की माँग करना इनकी लत सी हो गई है। अव तो स्थिति यहाँ तक आ गई है कि कुछ अति आधुनिक महिलाओं व उन्हीं के संगठनों द्वारा नारी ही वच्चे पैदा क्यों करे जैसे प्रश्न उठाने, अपने नाम के साथ पिता या पति का नाम नही लगाने जैसा दुस्साहस भी दिखाया जा रहा है। यही कारण है कि फैन्टेसी व वी.एम.एड्स जैसी स्वछंद सस्कृति को वढावा देने वाली पत्रिकाओं की प्रसार सख्या लाखो में होती जा रही है। अविवाहित, तलाकशुदा, परित्यक्ता व कँवारी माताओं की वढती जा रही संख्या, छिन्न-भिन्न होते जा रहे परिवारों, वढती जा रही अवैध संतानों, महिलाओं के लिए वन रही लाइट सिगरेटों की वढती विक्री, वंद होती जा रही रसोइयों, खुलते जा रहे फास्टफूड सेन्टर्स व नाचगृहों को परिवर्तन तो मानना ही होगा, लेकिन प्रगति विल्कुल नहीं।

तो फिर प्रश्न उठता है कि कि ऐसे परिवर्तन कौनसे हैं, जिससे प्रगति संभव है ? इसके लिए समस्या के मूल पर चोट करने की आवश्यकता है। नारी की दुर्दशा, उत्पीड़न, उपेक्षा व कष्टों के मुख्य कारण हैं। उसके पास राजनैतिक प्रशासनिक, आर्थिक व वौद्धिक शक्ति की न्यूनता। इस न्यूनता को अधिकता या कहा जाए पर्याप्तता में वदलकर ही सकारात्मक परिवर्तन विना किन्हीं साइड इफैक्ट्स के लिए जा सकते हैं। इस सम्वन्ध में पंचायती राज कानून को आदर्श मानकर संसद या विधानसभा सहित सभी वोर्डो, समितियो, सलाहकार परिषदों आदि में महिलाओं को न्यूनतम तीस प्रतिशत आरक्षण देने की कानूनी व्यवस्था करने की आवश्यकता है तव ही अखिल भारतीय व राज्य स्तरीय प्रशासनिक, पुलिस व सामान्य सेवाओं में इसी अनुपात में आरक्षण की वात मनवाई जा सकती है। नारी को विभिन्न वहानों से घर में कैद करके रखने के स्थान पर उसे विधायिकाओं, दफ्तरों, कारखानों, व्यापर स्थलों, शोध संस्थाओं, प्रशिक्षण केन्द्रों, नियोजन कार्यालयों, उच्च शिक्षण संस्थाओं आदि में भेजने की है। महिलाओं के विकास के लिए कानून वनाने से पूर्व संगठनों से विचार-विमर्श नहीं करने, क्रियान्वयन में

उनको भागीदारी नही देने, सबधित अधिकारियो को दायित्वपूर्ण नही बनाने, उत्तरदायी अधिकारियो का निर्धारित समयान्तर में प्रतिनिधि महिला संगठनों से प्रत्यक्षत साक्षात्कार जरूरी नही बनाने, निर्धारित लक्ष्योंको पूरा नही करने को कार्य के प्रति लापरवाही नही मानने, लक्ष्यो के अनुसार राशि का आवंटन नही करने से महिला विकास होने वाला नही है। चाहे राजनैतिक दृष्टि से प्रचार का लाभ भले ही मिल जाए।

महिला साक्षरता के लिए व्यापारिक, व्यावहारिक व औपचारिक कार्यक्रम बनाकर तथा उसी के अनुरूप मानवीय व वित्तीय साधन उपलब्ध करवाकर एक साथ अज्ञानता, रूढिवादिता, सकीर्ण सोच, झिझक की मानसिकता के विरुद्ध लडा जाना आसान हो सकता है। निश्चय ही यह कार्य केवल सरकार पर निर्भर रहने, उसे दोषी ठहराते रहने या पुरुष प्रशासको को कोसते रहने से पूरा होने वाला नही है। इसके लिए विशेष रूप से महिला सगठनो तथा सभी स्वैच्छिक संगठनो को आगे आकर इस महायज्ञ मे अपनी क्षमता व योग्यतानुसार आहूति देने की आवश्यकता है। केवल समय गुजारने, प्रचारित होने व सरकारी मदद को हड़पने के उद्देश्य से महिला सगठन चला रही कोन्वेन्ट सस्कृति वाली पदाधिकारियों को भी समझ लेना चाहिए कि यह उद्देश्य केवल सभा, सम्मेलन, सगोष्ठी व कार्यशाला आयोजित कर समाचार पत्रो मे खबर छपा देने मात्र से पूर्ण नहीं हो सकता है। इसके लिए तो गरीब, निरक्षर व सूचनाहीन महिलाओं के साथ समानता, सहृदयता व स्वाभाविकता के साथ व्यवहार करने की जरूरत है। उनमे जब तक स्वाभिमान, आत्मविश्वास व इच्छा शक्ति जागृत नही होती है, बहुत कुछ ठोस नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष यह है कि महिला विकास का उद्देश्य तब ही पूरा हो सकता है जब महिला सगठन स्वय सगठित, समन्वित, सक्रिय व समर्पित हों, सरकार कथनी व करनी के भेद को मिटाये व सामान्य प्रशासन कुण्ठाओं से रहित होकर कार्य करे। तब ही हर परिवर्तन का विकास मानने की मानसिकता से दूर होकर वास्तविक विकास की परिस्थितियाँ पैदा की जा सकती है।

❑❑❑

9

पति को पत्नी से बलात्कार का हक क्यों ?

पति द्वारा पत्नी के साथ बलात्कार। जी हाँ चौंकिये नहीं बल्कि यों कहिये पतियों द्वारा पत्नियों के साथ बलात्कार। यह किसी दैनिक में प्रकाशित भड़कीले समाचार की केवल हैड लाइन नहीं है बल्कि एक ऐसी वास्तविकता है जिसका भारतीय समाज की विवाहित महिलाएँ वर्षों से मुकाबला करती आ रही हैं, लेकिन किसी भी समाज सुधारक, विधिज्ञाता या राजनीतिज्ञ का ध्यान इस ओर आज तक नहीं गया है। व्यक्ति केवल उसी बलात्कार के बारे में बात करता है जिसकी खबर समाचार पत्र में प्रकाशित होती है। उसी बलात्कारी को सजा दी जाने की माँग की जाती है जिसके कृत्यों का पर्दाफाश हो जाता है, लेकिन भारत में आज जो लाखों की संख्या में प्रतिदिन बलात्कार हो रहे हैं, उसके बारे में कोई भी व्यक्ति चिंतित होता नजर नहीं आता - वह व्यक्ति भी नहीं जो इस दुष्कृत्य का शिकार होता है।

कोई भी व्यक्ति यह प्रश्न कर सकता है कि पति द्वारा पत्नी के साथ कैसा बलात्कार ? पति को तो कानूनी रूप से अपनी पत्नी के साथ शारीरिक *सम्बन्ध स्थापित करने का पूरा अधिकार है। जी हाँ - पति को अधिकार है* '' इस वाक्यांश में ही तो भारतीय विवाहित स्त्री का पूरा दु ख-दर्द छिपा है। पति को अपनी पत्नी के साथ किसी भी समय शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार है, चाहे पत्नी मानसिक व शारीरिक रूप से किसी भी प्रकार इस कार्य के लिए तैयार न हो।

इण्डियन पेनल कोड की धारा 375 के अनुसार किसी भी स्त्री की इच्छा के विपरीत उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना बलात्कार की

श्रेणी मे आता है व यदि कोई महिला 17 वर्ष से कम उम्र की है तो उसकी सहमति से स्थापित शारीरिक सम्बन्ध भी बलात्कार की श्रेणी मे ही आते है। कानून में चाहे महिला के साथ किए गए ऐसे कुकर्म के लिए सजा का प्रावधान है, लेकिन वास्तविक रूप में मुश्किल से 2 प्रतिशत केस ही कानून के सामने आ पाते है, क्योंकि भारतीय समाज की ऐसी परिस्थितियाँ है, जिनमें कोई भी महिला जिसके साथ बलात्कार किया गया है कानून की शरण मे जाने से हर हालत मे बचना ही चाहती है, क्योकि भारतीय कानून मे ऐसी अनेको कमियाँ है, जिसके सहारे बलात्कारी पुरुष सजा से बच जाता है व बेकार में ही पीडित महिला को सामाजिक तथा पारिवारिक, तिरस्कार का सामना करना पडता है। लेकिन दुर्भाग्य से पत्नी को तो किसी भी प्रकार का कानूनी अधिकार ही नही है। भारतीय कानून के अनुसार यदि पत्नी 15 वर्ष से अधिक उम्र की है तो पति का उसके साथ बलात्कार करने का भी पूरा अधिकार है व पत्नी की उम्र यदि 15 वर्ष से कम है तो भी पति के लिए बहुत ही मामूली सजा का ही प्रावधान है। कानून मे ऐसे प्रावधानो के पीछे सबसे बडा कारण यह है कि भारतीय समाज को हमेशा से ही पुरुष प्रधान समाज माना जाता रहा है व ऐसे कानूनो के निर्माण मे पुरुषो का ही हाथ सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है।

भारतीय समाज मे पत्नी को पति की एक तरह से वस्तु ही माना गया है व समाज ने उसे ऐसे अधिकार दे रखे है कि वह उसका जैसे चाहे वैसे उपयोग करे व शारीरिक सम्बन्धो की स्थापना के सम्बन्ध मे भी उसका यही दृष्टिकोण रहता है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ सायकाल दिनभर भरी दोपहरी मे खेतो मे काम करने के बाद अपने सिर पर भारी वजन रख कर घर पहुँचती है। पूरे परिवार के लिए खाना बना कर वह घर का अन्य कार्य करने के बाद जब सोने के लिए पहुँचती है तो क्या वे मानसिक रूप से शारीरिक सम्बन्धो से आनन्द लेने की अवस्था मे होती है । निश्चित रूप से नही, लेकिन क्या उस महिला का पति उसकी मानसिक अवस्था की चिन्ता करता है ? नही। वह तो अपनी मानसिक व शारीरिक भूख शात करने के लिए पत्नी के न चाहने पर भी उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर ही लेता है। वह बेचारी पत्नी, जिसे हर समय पति को परमेश्वर मानने की ही सलाह दी जाती रहती है, यह सब कुछ

करने के लिए उसी प्रकार तैयार हो जाती है, जिस प्रकार एक बलात्कारी के चक्कर मे पड़ने के बाद लोकलाज के डर के मारे कोई भी महिला बेमन से तैयार हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में पति द्वारा अपनी पत्नी के साथ स्थापित शारीरिक सम्बन्ध क्या किसी भी प्रकार बलात्कार से कम है ?

एक शराबी पति जिसे अपनी पत्नी व बच्चों के खाने-पीने की चिन्ता न होकर केवल शराब पीने की ही चिन्ता होती है, शराब के नशे में धुत्त होकर जब रात बारह बजे के आसपास घर पहुँचते ही गाली-गलौच के साथ अपनी पत्नी के साथ एक पशु जैसा व्यवहार करना प्रारम्भ कर देता है तो क्या उस पत्नी की इच्छा ऐसे पति से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने की होती है ? और पति-पत्नी के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसे बलात्कार नहीं तो क्या दो दिलों का मिलाप कहा जाएगा ?

ऊपर वर्णित उदाहरण किन्हीं दो-चार महिलाओं से ही सम्बन्धित नहीं हैं, बल्कि यह तो भारतीय समाज में प्रतिदिन लाखों-करोड़ों स्त्रियों के साथ होने वाले व्यवहार की आम बात है। प्रश्न उठता है, भारत में विवाहित स्त्रियों को ऐसी परिस्थितियों का सामना क्यों करना पड़ता है व उसका हल आज तक क्यों नहीं निकल पाया है ? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है - भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति। भारत की महिला केवल शारीरिक दृष्टि से ही पुरुष से कमजोर नहीं है, बल्कि वह आर्थिक दृष्टि से भी पूरी तरह पति पर निर्भर रहती है। समाज में दूसरे दर्जे का नागरिक समझी जाती है, राजनैतिक तौर पर असंगठित है, धार्मिक दृष्टि से बहुत अधिक धार्मिक ही नहीं बल्कि पूरी तरह अंधविश्वासी भी है। भारत में शादी के तुरन्त बाद विदाई के समय परिवार का हर छोटा व बड़ा व्यक्ति विवाहिता को एक ही शिक्षा देता है कि अब इस संसार में तुम्हारा सब कुछ तुम्हारा पति ही है वह जैसा भी है तुम्हारे लिए परमेश्वर के समान है।

आज का आधुनिक पति, पत्नी को सोसायटी में मूव करवाने, एडल्ट पार्टियों में शिरकत करवाने, बॉस से इन्ट्रोड्यूस करवाने, बिजनेस ट्यूर पर भेजने व आयातकों को इन्टरटेन करवाने के नाम पर ऐसी ही परिस्थितियाँ पैदा कर रहा है। आश्चर्य तो यह है कि यह सब कुछ फारवर्ड होने के बहाने से

न खाया जा रहा है। इतना ही क्यों भारत मे ऐसे परजीवी पतियों की भी कमी नही है जो पत्नी को वास्तव मे ही वेश्या बना कर उसके लिए ग्राहक ढूंढते रहते है। ऐसी कई उपजातियाँ है जहाँ एक भाई की पत्नी को सभी भाइयो की पत्नी मान लिया जाता है। ऐसे सभी भाइयों से पत्नी का भावनात्मक लगाव कैसे हो सकता है ? जब ऐसा नहीं हो सकता है तो सब पति मिल कर उसके साथ जो कुछ करते है वह बलात्कार क्यो नहीं हुआ ?

प्रश्न उठता है बलात्कार की इस समस्या का निदान क्या है ? समस्या का वास्तविक निदान है, परिवर्तन। जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन। आर्थिक क्षेत्र में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे महिलाएँ आत्मनिर्भर बन सकें।

पुरुष व महिला को काम के समान अवसर व समान काम के लिए समान वेतन मिल सके। सामाजिक मान्यताओ मे ऐसे परिवर्तन हो, जिनसे समाज मे पुरुष की प्रधानता के स्थान पर पुरुष व महिला को समान दर्जा मिल सके। कुल मिलाकर पत्नी को सच्चा जीवन साथी स्वीकार करने की पुरुष की मानसिकता तब ही बन सकती है जब महिला को भी व्यक्ति मानने की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सके।

□□□

10

बाल यौन शोषण की समस्या

मुम्बई स्थित टाटा समाज विज्ञान संस्थान जिसका नाम महिलाओ व बच्चों की समस्याओं के अध्ययन व शोध के क्षेत्र में जाना-पहचाना है के अनुसार भारत में तीन लाख बाल वेश्याएं हैं तथा इनकी संख्या बहुत तेजी से बढती जा रही है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी यह समस्या विकराल रूप लेती जा रही है। पिछले दिनों स्टॉकहोम में इस समस्या पर विचार करने के लिए हुए एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में भी नोबल पुरस्कार विजेताओं ने बाल यौन शोषण रोकने हेतु कई कदम उठाने की एक अपील जारी की। सम्मेलन का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि इसका उद्घाटन स्वीडन के प्रधानमंत्री ने किया तथा इसमें हजारों की संख्या में विभिन्न राष्ट्रों के समाज वैज्ञानिकों, सरकारी अधिकारियों व स्वैच्छिक संगठनो के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन की गतिविधियों व कुछ ही समय पूर्व बेल्जियम में दो मासूम बच्चियों की बलात्कार के बाद हत्या किए जाने की घटना को प्राय सभी देशों के प्रचार माध्यमों ने जो स्थान दिया उससे समस्या की व्यापकता का आभास हो जाता है। प्रश्न उठता है कि बाल यौन शोषण की समस्या क्या वास्तव में ही इतनी भयानक व व्यापक है ? ऐसा ही यदि है तो इसके क्या कारण है तथा इसका निदान क्या और कैसे किया जा सकता है ?

अन्तरराष्ट्रीय संदर्भों मे इस हकीकत को नहीं नकारा जा सकता कि अधिकांश पश्चिमी अमेरिकी व अफ्रीकी राष्ट्रों में भोग विलास की संस्कृति का प्रभाव अविश्वनीय स्तर तक बढ रहा है। हमारे लिए ये आँकडे सिर चकरा देने वाले भले ही हों, लेकिन यथार्थ यह है कि स्वीडन में विवाह होने तक एक

बालिका औसतन चार पुरुषों के सम्पर्क में आ चुकी होती है तथा वहाँ दो-तिहाई जोड़े अविवाहित हैं। अमेरिका में बारह वर्ष से कम उम्र की गर्भवतियों की संख्या प्रतिवर्ष लाखों में होती है तथा पन्द्रह लाख के करीब ऐसी बालिका माताएँ विवाह किए बिना ही अपने बच्चों को पाल रही हैं। युगांडा, सूडान, नाइजीरिया जैसे अफ्रीकी राष्ट्रों में वेश्यावृत्ति सर्वाधिक सस्ता, सुलभ व सक्रिय व्यवसाय बन चुका है। यह रोग नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश व भारत जैसे परम्परावादी संस्कृति वाले देशों में भी तेजी से फलता जा रहा है। भारत में ही बम्बई, कलकत्ता व मद्रास जैसे महानगरों में हजारों की संख्या में बाल वेश्याएँ अपना व परिवारजनों का पेट भरने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगाने को मजबूर हो रही हैं। ऐसी ही स्थिति थाईलैंड, ताइवान, हांगकांग, वियतनाम जैसे देशों की है जहां वेश्यावृत्ति सबसे बड़ा कुटीर उद्योग व विदेशी मुद्रा अर्जन का माध्यम बन गया है। उत्तरी व दक्षिणी कोरिया, ब्राजील ही नहीं बल्कि जापान जैसे राष्ट्रों की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। यहाँ पर यह समझना भारी भूल होगी कि बाल यौन शोषण का मतलब केवल बालिका वेश्याओं की समस्या से ही है। यह समस्या बालकों के संदर्भ में भी उतनी ही भयानक है तथा दोनों ही के यौन शोषण के तरीके व कारण अनेकों और प्रकार के भी हैं। उनको जानने से पूर्व यह जानना बहुत जरूरी है कि आठ-दस साल से लेकर 18 वर्ष से कम उम्र की बच्चियाँ वेश्यावृत्ति की ओर ज्यादा क्यों जा रही हैं या उन्हें क्या लाया जा रहा है?

आमतौर पर गरीबी, निरक्षरता व संरक्षण के अभाव जैसे वेश्यावृत्ति के कारणों को यहाँ भी गिनाया जाता है, जो एक सीमा तक सही भी है। गरीबी सभी मजबूरियों की जड़ है। दुर्भाग्य से गरीब लोगों के ही बच्चे ज्यादा होते हैं, जिनका लालन-पालन करना माता-पिता के बस की बात नहीं होती है। ऐसे में उनके पास उन्हें वेश्यावृत्ति की ओर धकेलने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता है। इस बाजार में कई कारणों से अचानक बच्चियों की माँग बहुत बढ़ गई है। इसके लिए एड्स के भय को सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण माना जा रहा है। यह माना जाता है कि जवानी की दहलीज पर चढ़ रही बालाओं का शारीरिक सम्पर्क तुलनात्मक रूप से कम पुरुषों से हो चुका होता है तथा उनमें

रोग प्रतिरोधक क्षमता भी ज्यादा होती है। एक आम मिथ्या धारणा यह भी बनी हुई है कि इस उम्र की बालाओं से यौन सम्पर्क करने से पुरुष की शारीरिक क्षमता बढ़ती है तथा उसे यौन रोग होने की सम्भावनाएँ कम होती हैं। विकृत मानसिकता वालों ने यह मिथ्या धारणा भी पाल रखी है कि इससे यौन तृप्ति भी ज्यादा मिलती है। इन सबको तो धनी लोगों के चौंचले माना जा सकता है, लेकिन भारत जैसे गरीब व रूढ़िवादी देशों में इसके लिए कई सामाजिक व धार्मिक कारण भी उत्तरदायी हैं। हमारे यहाँ सैकड़ों ऐसी प्रजातियाँ हैं, जिनमें बालक के जन्म पर मायूसी व बालिका जन्म पर उल्लास का सा वातावरण हो जाता है। यहाँ पुरानी प्रथाओं व संस्कारों के कारण माता-पिता अपनी बच्चियों को सैक्स के भेड़ियों के सामने परोसने में कुछ भी अन्यथा महसूस नहीं करते हैं। सैकड़ों की संख्या में ऐसे मंदिर हैं जहाँ मासूम बालिकाओं का विवाह केवल भगवान से होता है। स्पष्टत उन्हें भगवान के नाम पर अपना यौन शोषण बाल्यकाल से ही करवाने को राजी किया जाता है।

भारत में जमींदारी व बंधुआ मजदूरी प्रथा कानून बनाकर बंद कर दी गई हो, लेकिन देश में करोड़ों की संख्या में ऐसे मजदूर नौकर, खेतिहर मजदूर हैं जिनका सम्पूर्ण अस्तित्व अपनी मालिक की कृपा पर निर्भर करता है। बिहार, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश जैसे कई राज्य हैं जहाँ ऐसे पराजित लोगों की बहू-बेटियों की इज्जत लूटना मालिक अपना अधिकार समझता है। ऐसी ही स्थिति शहरी व अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों के घरों में काम करने वाली बाल नौकरानियों की है। मकान निर्माण, कली के भट्टों, सड़क बनाने जैसे कार्यों में जहाँ मजदूरों के परिवार सामूहिक रूप से रहते है बालक-बालिकाओं का कार्य के माध्यम से शारीरिक यौन शोषण भी होता है। ऐसी परिस्थितियों का प्रमुख कारण मजदूरों में व्याप्त दासता की प्रवृत्ति व शक्ति का अतुलनीय भेद ही है, जहाँ ऐसे शोषण के विरुद्ध जरा सी भी आवाज उठाना अपने भौतिक अस्तित्व को भी समाप्त करने के समान है। भारत की रूढ़िवादी सामाजिक परिस्थितियाँ भी इस समस्या के लिए जिम्मेदार है, जहाँ पारिवारिक रिश्तों में लाज, शर्म, छवि व प्रतिष्ठा जैसी थोथी बातों का अनावश्यक महत्त्व ज्यादा है, जिसकी आड में चालाक, धूर्त व मानसिक

विकृति वाले व्यक्ति बाल यौन शोषण के कुकर्म को करने व उसे छिपाकर रखने मे सफल हो जाते है। टीवी के माध्यम से फैल रही अपसंस्कृति व यौन प्रवृत्तियो की दृष्टि से मासूम बालक-बालिकाओं को समय से पहले ही जवान बना दिया गया है, ऐसे शोषण के अवसर हर एक के लिए बहुत बढा दिए गए है। तब ही तो स्कूल के अध्यापकों, तैराकी, चित्रकला व संगीत के प्रशिक्षक व रिश्ते में चचेरे एव मौसेरे भाइयों द्वारा ऐसे यौन शोषण के समाचार अधिक सख्या मे आने लगे है। दूसरी ओर कटु सत्य यह भी है कि सांस्कृतिक प्रदूषण के विस्तार के साथ ही कच्ची उम्र के बालक-बालिकाओ मे सैक्स के प्रति आकर्षण तेजी से बढ रहा है। इससे आधुनिकता के नाम पर स्वच्छंद व्यवहार करने, शराब की पार्टियाँ आयोजित करने व बात-बात पर भौंडे प्रदर्शन करने वाले माता-पिता का योगदान भी कम नही है।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह ही है कि समाज को अंदर ही अंदर खोखला कर रही इस समस्या का व्यावहारिक हल क्या है ? इसके लिए बडे कानून बनाने तथा उन्हे दृढता से लागू करने की आवश्यकता तो है ही साथ ही महिला जागृति मचों, महिला विकास समितियो तथा आय बढाने वाले कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने, बाल शोषण के अपराधियो का सामाजिक बहिष्कार करने, प्रत्येक ऐसी घटना के विरुद्ध तीव्र व तत्काल सामूहिक प्रतिक्रिया व्यक्त करने की जरूरत है। प्रत्येक सरकार का यह दायित्व है कि राजनैतिक इच्छा शक्ति के साथ धार्मिक एव सामाजिक परम्पराओ के नाम पर चल रही बुराइयों को रोकने के लिए कानून बनाए तथा प्रशासन को इस सम्बन्ध में सवेदनशील निष्पक्ष व सक्रिय होने को मजबूर करे, साथ ही इस क्षेत्र मे कार्य कर रहे स्वैच्छिक सगठनो को भी प्रोत्साहित व सरक्षित करने की आवश्यकता है।

□□□

11

स्त्री-पुरुष की समानता : कितना ढोंग कितना यथार्थ ?

विभिन्न सरकारों, राजनैतिक दलों व सामाजिक संगठनों द्वारा महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा दिलावने की बातें व घोषणाएँ जब-तब की जाती रही हैं। हाँ ! हाल के वर्षों में इसका चलन कुछ ज्यादा ही हो गया है। विशेष रूप से उनके लिए नौकरियों व चुनावों के समय टिकट वितरण में तीस प्रतिशत की माँग हर कोई कर रहा है। इतना ही नहीं अब तो ग्राम पंचायत से लेकर जिला परिषद के चुनावों तक में उनके लिए तीस प्रतिशत स्थान संवैधानिक रूप से सुरक्षित कर दिए गए हैं। अब सामान्यतया सम्पूर्ण देश में व विशेषत शहरी क्षेत्रों में बैंकों, निजी कम्पनियों, पुलिस, होमगार्ड, विद्यालयों व सरकारी कार्यालयों में महिलाएँ काम करती हुई नजर आ जाती हैं। हर राजनैतिक दल, कर्मचारी संगठन व सामाजिक संगठनों में महिला विभाग का पृथक अस्तित्व मिल जाएगा। इतना ही क्यों भारत की महिलाएँ अब तो सेना के तीनों अंगों व उच्च पुलिस सेवा तक में बराबरी के आधार पर शामिल हो रही हैं, लेकिन प्रश्न उठता है क्या इन उदाहरणों के आधार पर यह मान लिया जाए कि भारत में महिला-पुरुष का अन्तर समाप्त हो गया है ? इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठाए जाने की आवश्यकता है कि क्या ऐसी समानता की बातें व आह्वान करने वाले वास्तव में ही गम्भीर हैं ? या उनका उद्देश्य भी केवल राजनैतिक लाभ प्राप्त करना ही है ?

जहाँ तक राजनैतिक दलों के गम्भीर होने का सवाल है उन पर तो विश्वास किया ही नहीं जा सकता है। इसका कारण केवल यह नहीं है कि

उनकी छवि ऐसी बन गई है, बल्कि इस सम्बन्ध मे तो यथार्थ भी स्पष्ट रूप से ऐसा ही है। जिस कांग्रेस दल ने पचायत संस्थाओ मे महिलाओं के लिए तीस प्रतिशत स्थान संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा सुरक्षित करवाए है उसकी राष्ट्रीय से लेकर ब्लाक स्तर तक की शायद किसी भी कमेटी (जिनकी संख्या कई हजारो मे है) मे तीस प्रतिशत महिलाएँ पदाधिकारी नही हैं। इससे इस दल के 'कर्णधारो' की संकीर्ण, स्वार्थी व प्रचार पाने वाली मानसिकता का पता चल जाता है। राष्ट्रीय कार्यकारिणी मे सर्वाधिक मतों से जीतकर आने वाले अर्जुनसिंह व शरद पवार को मनोनीत सदस्य का दर्जा देते समय उद्देश्य अनुसूचित जाति, जनजाति व महिलाओ को प्रतिनिधित्व देने का ही बताया गया था। उन स्थानो को नही भरा जाना इसी मानसिकता का परिचायक है। कमोबेश यही स्थिति और मानसिकता अन्य राजनीतिक दलों की है। इस सम्बन्ध मे अपने को सर्वाधिक प्रगतिशील कहने वाले साम्यवादी दलों का भी यही हाल है। मार्क्सवादी, साम्यवादी या फार्वर्ड ब्लॉक जैसे किसी भी वामपथी विचारधारा वाले दल में नेतृत्व के स्तर पर महिलाओं का स्थान गौण ही है। विभिन्न जनता दलो व भारतीय जनता पार्टी सहित विभिन्न क्षेत्रीय दलो की स्थिति तो और अधिक दयनीय है। वहाँ तो नारी के नेतृत्व को गुलामी की सी बात माना जाता है। तब ही तो प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पदों पर पुरुष ही नजर आ रहे है। नारी स्वतंत्रता या समानता के विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए आज तक किसी भी राजनीतिक दल ने किसी कार्यक्रम या आंदोलन की रूपरेखा नही बनाई है। देश की पचास प्रतिशत जनसंख्या के साथ भी वोट बैंक जैसा ही व्यवहार किया जा रहा है।

यही कारण है कि आजादी के चार दशकों व आठ पचवर्षीय योजनाओं की क्रियान्विति के बाद भी भारत मे नारी ही सर्वाधिक पीड़ित, शोषित व उत्पीडित वर्ग मे है। दहेज विरोधी कानून के बन जाने के बाद भी नारी को जलाने, त्यागने व मार दिए जाने की घटनाएँ व दहेज की बीमारी बढती ही जा रही है। उनके द्वारा सौंदर्य प्रसाधनों के उपभोग, फेशनपरक वस्त्रों के पहनावे, सार्वजनिक समारोह मे उपस्थिति व पुरुष से बातचीत को चरित्र हनन के रूप मे देखा जाता है। बालविवाह निषेध व विधवा विवाह की स्वीकृति को समाज

आज भी पचा नहीं पा रहा है। सती होने व उसे महिमामंडित करने की मानसिकता में परिवर्तन नहीं हुआ है। राष्ट्रीय आय की गणना में गृहणियों के काम को जो आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार हर प्रकार से उत्पादन है शामिल नहीं किया जाता है। बालक को बालिका की तुलना में खिलाने, पिलाने, शिक्षा दिलवाने व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करवाने में वरीयता दिए जाने की माता-पिता की सोच में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया है। संसद व विधानसभाओं में महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों का प्रतिशत दस तक भी नहीं पहुँच सका है। इनमें निरक्षरता, बेरोजगारी व बीमारी आदि की दर तुलनात्मक रूप में कई गुना अधिक है। रूढियों, सामाजिक कुरीतियो व परम्पराओं की सर्वाधिक मार इन्हीं को सहनी पडती है। कानूनों के निर्माण के बाद भी बहु पत्नी, बहु पति, नाता व रखैल जैसी नारी विरोधी प्रथाएँ उसी प्रकार चल रही है। समाज की पंचायत "मीरा" को नंगा करके गाँव में सरेआम घुमाये जाने व 'भँवरी" के साथ बलात्कार किए जाने पर भी अपराधियों का कुछ भी नहीं बिगडने दे रही है। प्रशासन की निष्क्रियता व भावनाशून्यता के कारण नारी उत्पीडकों के हौसले आसमान छूने लगे हैं। पाँच सितारा होटलों, ब्यूटी पार्लरों, हैल्थ क्लबों, नृत्य स्कूलों व हॉबी सेन्टर्स ने आधुनिकता के नाम पर नारी शोषण के नए रास्ते खोल दिए हैं। बालिका भ्रूण को मार देने, दूध के दाँत टूटने से पूर्व ही शादी रचा देने, बडे भाई की पत्नी को सब भाइयों की पत्नी मानने जैसी बुराइयों पर काबू नहीं पाया जा सका है। देह व्यापार का विस्तार दिन-दूनी रात चौगुनी गति से हो रहा है। प्राइवेट सैक्रेट्री, रिसेप्शनिष्ट, मॉडल सिनेमा जैसे धंधों ने तो नारी को केवल भोग की वस्तु बना कर रख दिया है। नौकरीपेशा महिलाओं की नौकरी व गृहस्थ रूपी दो पाटों के बीच में कैसी दयनीय हालत होती है, उसका अनुमान पुरुष नहीं लगा सकता है। नारी अभी भी समाज में किसी पुरुष की बहन या पत्नी के रूप में ही जानी जाती है, जिस नारी का स्वतंत्र अस्तित्व है उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है।

प्रश्न उठता है स्वतंत्रता के बाद नारी स्वतंत्रता, समानता व स्वालम्बन के लिए कई कानूनों के निर्माण, योजनाओं की क्रियान्विति व घोषणाओं के बाद भी परिस्थितियों में आधारभूत परिवर्तन क्यों नहीं हो पा रहा है ? इस प्रश्न

का सीधा व स्पष्ट उत्तर है - किए गए प्रयासो का वस्तुनिष्ठ व मूल परिवर्तन वाले नहीं होना। इसके लिए आवश्यक है नारी की सामाजिक, पारिवारिक व आर्थिक स्थिति को दयनीय बनाने वाली रूढ़ियों, कुरीतियों व परम्पराओं पर सीधा प्रहार किया जाए। यह कैसी हास्यास्पद स्थिति है कि पुरुष के साथ समानता की घोषणाओ, कार्यक्रमों व कानूनों के बीच पति को परमेश्वर मानने की मानसिकता मे हम जरा सा भी परिवर्तन नहीं करना चाहते हैं। माँग मे सिन्दूर, गले मे मगल सूत्र व हाथों में चूडियो को सुन्दरता का नहीं बल्कि सुहाग (अर्थात गुलामी) का प्रतीक माना जाता है। राखी को भाई-बहन के प्रेम का नहीं बल्कि बहन पर भाई के प्रभुत्व का प्रतीक माना जाता है। राखी बँधवाकर भाई बहन की रक्षा का दायित्व ऐसे लेता है जैसे नारी का पुरुष के बिना कुछ अस्तित्व ही नहीं है। विवाहित स्त्रियो द्वारा करवा चौथ का व्रत करना पुरुष के आधिपत्य को स्वीकार करना ही है। यह सब प्रथाएँ व रूढियाँ ही नारी को पुरुष के बराबर नहीं होने दे रही है। विडम्बनापूर्ण स्थिति तो यह है कि पति चाहे कितना भी मदबुद्धि, अनकमाऊ व गँवार हो पत्नी को उसे निभाने व उसे परमेश्वर मानने को बाध्य किया जाता है। उसकी मृत्यु के बाद चूडियाँ फोडना, माँग मे सिन्दूर डालना बंद करना, लाल-पीले कपडे पहनने से परहेज करना, उच्चतम शिक्षित नारी के लिए भी समाज ने आवश्यक बना रखा है। लडकी चाहे कितनी भी योग्य हो उसे अपने भावी पति के सामने परखे जाने के लिए पेश होना ही होता है।

□□□

12

कानून के वावजूद महिला शोषण में वृद्धि : यह विरोधाभास क्यों

पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कार के मामलों की सुनवाई बंद कमरों व महिलाओं के बीच ही करने का फैसला कर अपनी सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता व व्यावहारिकता का एक और परिचय दिया है। इसी के साथ राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष द्वारा बलात्कार की शिकार बालिका को हर हालत में सही मान कर न्यायालयों मे कार्यवाही किए जाने की माँग की गई है जबकि एक बयान समाचार पत्रों में पूर्व आई.पी.एस. अधिकारी के.पी.एस. गिल के अभद्रव्यवहार की शिकार भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी श्रीमती रूपेन दियोल बजाज का छपा, जिसमें उन्होंने गिल की निजी क्षमा याचना पर मामला रफादफा करने के लिए पंजाब के पूर्व राज्यपाल सिद्धार्थ शंकर रे, मुख्य सचिव आर.पी. ओझा व सुरक्षा सलाहकार जुलियो रिबैरो जैसे अधिकारियों द्वारा उन पर दवाव डालने का आरोप लगाया है। उनके अनुसार उन्हें तो राष्ट्रीय हित में ऐसा करने के लिए वाध्य तक करने का प्रयत्न किया गया। इतना ही नहीं श्री गिल को अनेकों प्रकार से सम्मानित व पदोन्नत भी किया गया तथा अधिकांश उत्तरदायी समझे जाने वाले व्यक्तियों ने ऐसा तो होता ही रहता है, कह कर मामले को हलका बनाने का ही प्रयास किया। इसी संदर्भ में भटेरी सामूहिक वलात्कार की शिकार भँवरी देवी की न्यायालय में हार व उसके ही विरोध में उसी के गाँव की महिलाओं द्वारा विरोध प्रदर्शन की घटना को देखने की जरूरत है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में महिलाएँ शिक्षा, चिकित्सा, सामान्य

रोजगार, प्रशासनिक सेवाओं, राजनीति, सामाजिक सेवा ही नहीं बल्कि पुलिस व सेना आदि सभी क्षेत्रों में आगे आई है तथा महिला संगठनों की संख्या व प्रभाव में वृद्धि हो रही है, साथ ही पंचायती राज संबंधी संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा हजारों की संख्या में महिलाओं ने जन प्रतिनिधि का दर्जा प्राप्त किया है। आमतौर पर महिलाओं की पढ़ाई, नौकरी व शादी सम्बन्धी सामाजिक धारणाओं में सकारात्मक परिवर्तन आने प्रारम्भ हो गए है। हमारा वर्तमान समाज अर्थव्यवस्था में उदारीकरण के साथ ही साथ स्वच्छंदता जिसे आधुनिकता भी कहा जाता है की ओर तेजी से आगे बढ़ता जा रहा है। आश्चर्यजनक रूप से इसी के साथ बलात्कार, बालिका यौन शोषण, तलाक, महिला उत्पीडन व महिला अपराध की घटनाएँ भी तेजी से बढ़ती जा रही है। यह हमारे समाज का निश्चय ही विडम्बनापूर्ण विरोधाभास है। यानि जिस समाज में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका तेजी से बढ़ती हुई बताई जा रही है, उसी समाज में उनके तिरस्कार, शोषण व अपमान का स्तर भी बढ़ता ही जा रहा है। प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसा क्यों ? क्या अधिक से अधिक कानून बना कर ऐसी समस्याओं पर काबू पाया जा सकता है ?

दूसरे प्रश्न का उत्तर यदि पहले खोजने का प्रयास किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि यह समस्या केवल कानून के सहारे हल होने वाली नही है, क्योंकि कानून तो पहले से ही बहुत बने हुए है। वास्तविक समस्या उन्हें पूरी तत्परता से लागू करने की है। बलात्कार की कानूनी परिभाषा तो किसी महिला से पति जैसा ढोंग करके या फुसला कर किसी पुरुष द्वारा सम्भोग करने की है। इस अपराध के लिए पुरुष को कड़ी सजा की व्यवस्था है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 375-76 में वर्ष 1983 में ही संशोधन कर पुलिस हिरासत में होने वाले बलात्कारों के लिए पुलिसकर्मियों के लिए अधिक कड़ी सजा की व्यवस्था की गई है। धारा 376 (सी) जोड़ कर पुलिसकर्मियों के लिए सात साल तक की सजा का प्रावधान किया गया है। इसी धारा के अन्तर्गत पुलिस अधीक्षक तक के लिए सजा की व्यवस्था की गई है तथा शिकायतकर्ता महिला को मूल रूप में सही माना गया है अर्थात बलात्कार

नहीं हुआ यह सिद्ध करने का कानूनी दायित्व पुलिसकर्मियों पर ही आ जाता है। इसी प्रकार वर्ष 1992 में महाराष्ट्र में मथुरा नामक एक महिला के साथ अस्पताल में सामूहिक बलात्कार हुआ तो कानून में संशोधन कर अस्पताल अधिकारियों तक के लिए सजा की व्यवस्था की गई। इसी प्रकार धारा 509 में महिला के साथ छेड़छाड करने पर धारा 354 में शारीरिक रूप से किसी भी प्रकार से तंग करने तक के लिए सजा के प्रावधान हैं। यहाँ तक कि महिला सेवाकर्मी के वार्षिक वेतनवृद्धि निर्धारित समय पर नहीं लगाने, उसके सम्बन्ध में दुष्प्रचार करने, दूसरी शादी करने पर भी पुरुष को सजा हो सकती है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव करना स्वत अपराध की श्रेणी में आ जाता है। कानून के अनुसार तो 16 वर्ष से कम आयु की लडकी से सहमति के आधार पर भी संभोग नहीं किया जा सकता है। इतना ही नहीं 15 वर्ष से कम आयु की विवाहिता से तो पति भी अनिच्छा से शारीरिक संबंध स्थापित नहीं कर सकता है। इसी प्रकार बाल विवाह पर रोक का कानून - शारदा एक्ट तो 1931 मे बना हुआ है। दहेज विरोधी कानून का उपयोग तो अब होता सा नजर आ रहा है। हिन्दू उत्तराधिकार कानून के अन्तर्गत तो विवाहित महिला तक को पिता की सम्पत्ति में से बराबर का हिस्सा पाने का अधिकार है।

प्रश्न उठता है इतने अधिक महिला समर्थक कानून होने पर भी उनके विरुद्ध बलात्कार, पारिवारिक हिंसा, देह शोषण जैसे अपराध क्यों तेजी से बढ रहे हैं? अकेले राजस्थान में ही वर्ष 1994 के दौरान 347 दहेज हत्याएँ हुईं व करीब पचास हजार बाल विवाह प्रति वर्ष होते हैं। यहाँ गाँवों में महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 5 प्रतिशत है। कई जातियों में तो बहु पति प्रथा उसी रूप में चल रही है तथा पति के सामने कैसी भी पत्नी की हैसियत प्राय कुछ भी नहीं मानी जाती है। पिता की सम्पत्ति में से अपना हिस्सा प्राप्त करने वाली महिला तो एक हजार में से एक भी नहीं है। बालिका देह शोषण की घटनाएँ तो आश्चर्यजनक रूप से बहुत तेजी से बढती जा रही हैं। कारण बिल्कुल स्पष्ट है कि किसी भी कानून को न तो प्रशासन व न ही जनता ने गम्भीरता से लिया है। साथ ही महिला को पैर की जूती समझने, महिला की अक्ल माथे के पीछे

होने, उसका कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित रखने व उसकी कौमार्य पवित्रता को अति-महत्त्वपूर्ण मानने की पुरुष की मानसिकता में परिवर्तन नही आ सका है, साथ ही अभी तक भी आम महिला पति को परमेश्वर मानने, सहनशीलता को नारी की धरोहर के रूप में स्वीकार करने व विवाह को सामाजिक बधन समझने की मानसिकता में ही जी रही है। यही कारण है कि बलात्कार, शारीरिक उत्पीडन, पति द्वारा किए जाने वाले अत्याचार, निकट सम्बन्धियो की नाजायज हरकतो आदि के अधिकांश मामले तो प्रकाश में आते ही नही है। नारी अधिकाश अत्याचार समाज में इज्जत बनाए रखने के नाम पर ही सहन कर रही है। उसकी इस कमजोरी या मजबूरी के कारण ही शारीरिक उत्पीडन करने वाले पुरुष बलात्कारी व बलात्कारी कालान्तर मे सामूहिक बलात्कारी हो जाते है। बच्ची की इज्जत बचाए रखने के नाम पर ही अधिकाश माता-पिता उपलब्ध कानूनो, पुलिस या सामान्य प्रशासनिक व्यवस्था का सहारा नहीं लेते है। एक मोटे अनुमान के अनुसार ऐसे केवल दो प्रतिशत मामलो की ही पुलिस तक शिकायत होती है और उनमे भी वास्तविक सजा पाच प्रतिशत अपराधियो को ही हो पाती है।

यह सही है कि महिला सगठनो की संख्या व प्रभाव दोनो ही बढते जा रहे है, लेकिन यह केवल बडे शहरो में संभ्रात कही जाने वाली महिलाओं के समय गुजारने के साधन अधिक है, जिनको सरकारी सहायता आवश्यकतानुसार व कार्य के अनुसार नही बल्कि सम्बन्धो के आधार पर ही दी जाती है। ऐसे सगठन महिलाओ के विरुद्ध किए जा रहे हत्याचारो का मुकाबला कानून के माध्यम से कर मीडिया के माध्यम से करना चाहती है। उनके आदोलन पीडित महिलाओं की पीडा को कम करने के लिए नहीं बल्कि समाचार माध्यमों में छाये रहने के लिए होते है। इसके लिए वे हमेशा मुद्दे तलाशते रहते है, परिणामस्वरूप भँवरी 'भँवर' मे से निकलने के स्थान पर महिलाओं द्वारा ही अति-आदोलन के कारण असहाय बन कर रह जाती है।

कानून को लागू करने का वास्तविक दायित्व तो प्रशासन का होता है और दुर्भाग्य से कानून निर्माताओ (जन प्रतिनिधियो) के ढीले नियत्रण के कारण उसकी ही भूमिका सर्वाधिक गैर उत्तरदायित्वपूर्ण होती है। तब ही तो

शारदा एक्ट, दहेज विरोध व उत्तराधिकार जैसे कानूनों की सरेआम धज्जियां उडती हैं। वास्तविकता तो यह है कि कानूनों को लागू करने के लिए उत्तरदायी प्रशासकों के दफ्तरों में ही महिलाओं का सर्वाधिक शोषण होता है और प्रत्येक हैसियत वाला अधिकारी तो यह सब कुछ करना अपना अधिकार समझता है। ऐसी ही स्थिति राजनीतिज्ञों की है। प्राय प्रत्येक राजनैतिक दल मे महिला उत्थान व उत्पीडन विरोध के लिए कई महिला सम्भाग व सगठन बने हुए हैं, लेकिन शायद शोषण की शिकार उनकी पदाधिकारी व सदस्य ही होती है, इसीलिए भारत में कोई भी महिला आदोलन सफल होकर अतिम परिणति तक नहीं पहुँच पाता है। एक कारण यह भी है कि महिला स्वय ही अपनी 'सास' व 'ननद' ब्रांड प्रवृत्तियो को त्याग नही पा रही है। कुल मिलाकर अंतिम निष्कर्ष यही निकलता है कि वर्तमान कानूनों को पूरी तरह से लागू करके व महिला तथा पुरुष दोनों की ही मानसिकता मे परिवर्तन लाकर ही कुछ परिवर्तन लाया जा सकता है, साथ ही अभी भी पारिवारिक हिंसा, विवाह के अनिवार्य पंजीयन, पति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति पर पत्नी का अधिकार, पिता की सम्पत्ति में से पुत्री का भाग स्वत माँगे बिना नही देने को दण्डनीय अपराध मानकर कानून बनाने व उन्हें प्रभावी रूप से लागू करने की आवश्यकता है, साथ ही अब पुलिस, सेना व अन्य पुरुष प्रधान माने जाने वाले कार्यक्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी अतिरिक्त प्रयत्न कर बढाने की भी जरूरत है, तब ही कुछ सार्थक व स्थायी परिणाम प्राप्त किया जा सकता है।

□□□

13

सामूहिक विवाह व्यवस्था : प्रचार अधिक उपयोगिता कम

वर्तमान में सामूहिक विवाह ऐसी व्यवस्था हो गई है जिसे प्रगतिशीलता, रूढ़ियों पर प्रहार व सकारात्मक परिवर्तन का प्रतीक मान लिया गया है, तब ही तो हर जाति, सम्प्रदाय व शहर में इस हेतु पंजीयन, परिचय सम्मेलन व विवाह समारोह करने वाले संगठनों की संख्या तेज गति से बढ़ती जा रही है। समाज सेवा के कार्यकर्ता बाकी क्षेत्रों को छोड़ कर इस पुण्य कार्य के लिए दौड़े जा रहे हैं। आश्चर्यजनक स्थिति तो यह है कि विभिन्न संगठन लाखों रुपए प्रचार पर खर्च ही नहीं कर रहे हैं, बल्कि परोक्ष रूप से दूसरे ऐसे ही संगठनों को नीचा दिखा व स्वयं को श्रेष्ठ बनाने के हर अच्छे व बुरे उपाय अपना रहे हैं। इतना ही नहीं सम्भावित वर व वधुओं व उनके माता-पिता तथा संरक्षकों को ललचाने के प्रयास भी किए जाते हैं। प्रश्न उठता है क्या यह सब कुछ वास्तव में ही समाज सेवा की भावना से किया जाता है? क्या सामूहिक विवाह निश्चय ही एक सकारात्मक कदम है? क्या इनसे परम्परागत बुराइयों पर काबू पाया जा रहा है। भेड़ चाल व किसी का भी बिना कारण दुत्कार देने वाले समाज में हवा के विपरीत दिशा में चलना "आ बैल मुझे मार" की कहावत को चरितार्थ करने के समान ही है, लेकिन यथार्थ का बयान नहीं करना कलम का अपमान भी तो है।

सैद्धान्तिक रूप से हमारे जैसे विवाह की अनिवार्यता वाले समाज में सामूहिक विवाह निश्चय ही एक प्रगतिवादी व सकारात्मक कदम है, जिसके माध्यम से दहेज प्रथा, दिखावा, विद्युत व प्रदर्शन साधनों का अपव्यय, बेमेल

विवाह, अवयस्क लडकियों के हाथ पीले करने जैसी बुराइयो पर काबू पाया जा सकता है। इस बात से भी इनकार नही किया जा सकता है कि इस माध्यम से समाज मे मेल-मिलाप, पिछडे को सम्मान, विकल्पों या विस्तार व सात फेरों से पहले भावी पति-पत्नी द्वारा एक-दूसरे को जानने की आवश्यकता जैसे उद्देश्यो को भी एक सीमा तक पूरा किया जा सकता है ? क्या वास्तव मे ही सामूहिक विवाहो के माध्यम से यह सब कुछ हो रहा है ? सीधे रूप मे इस प्रश्न का उत्तर हाँ या ना मे नही दिया सकता है। इस सदर्भ मे सभी गतिविधियो का गहन विश्लेषण किया जाए तब ही तथाकथित समाज सुधारको, राजनीतिज्ञो व पैसे के बल पर नेतागिरी जमाने के महत्वाकांक्षी व्यक्तियो के दावो व प्रचार की पोल खोली जा सकती है।

इसे केवल संयोग नहीं माना जा सकता है कि ऐसे सगठनो के पदाधिकारी अधिकांश मामलों में धनी, लेकिन विचारो से सकीर्ण होते है। जो मुद्रा खर्च कर पद, समारोहों में विशिष्ट स्थान व समाचार माध्यमो मे प्रचार तो प्राप्त कर सकते है, लेकिन अपने पुत्र, पुत्री या किसी रिश्तेदार को सामूहिक विवाह समारोह में शामिल कर रूढियों को तोडने की अगवाई का साहस नहीं दिखा सकते है। इसके लिए वे लडके या लडकी द्वारा सहमत नहीं होने, पारिवारिक वृद्धजनों द्वारा इजाजत नहीं देने, परिवार मे पहली ही शादी होने या दूसरे पक्ष द्वारा नाराजगी बताने जैसे थोथे बहाने ढूंढ लेते हैं। यह तो 'चढ जा बेटा सूली पर, भला करेगा राम' व 'गुड खाओ व गुलगुलों से परहेज' कहावतों के कथनानुसार व्यवहार करना ही हुआ। जिस सामूहिक विवाह सस्था के पदाधिकारी सामूहिक वेश्यावृत्ति काण्ड के आरोपी, बहू व पत्नी के कुख्यात शोषणकर्ता, परस्त्री गमन के आदती, दूसरी पत्नी, रखैल या वेरी प्राइवेट सेक्रेटरी रखने वाले सफेदपोश हों, वहाँ इस बहाने क्या कुछ करने का नापाक उद्देश्य हो सकता है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस बात के सैकड़ों प्रमाण हैं कि पैसे वालों व तथाकथित प्रतिष्ठित व्यक्तियो द्वारा यौन अपराध, महिला या विधवा आश्रमों, बालिका गृहों या इनसे सम्बन्धित कुटीर उद्योगों आदि की आड में ही किए जाते रहे है। लगता है अब ऐसे समाज सेवकों ने सामूहिक विवाह को इन सबका माध्यम बनाना प्रारम्भ कर दिया है,

क्योंकि पिछले दिनों में सामूहिक विवाह के लिए पंजीकृत होने वाली बालाओं, विधवाओं व बड़ी उम्र की लड़कियों के मजबूर माता-पिता से अन्यथा उद्देश्य से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने, उन्हें रोजगार व सहायता का लालच देने व विवाह समारोह में अतिरिक्त रूप से अनुगृहीत करने की कई शिकायतें व मामले प्रकाश में आए हैं।

विवाहों में होने वाली फिजूलखर्ची ऊपरी तौर पर कम होती नजर आती है, लेकिन व्यवहार में इसकी मात्रा व कुरीति पर नियंत्रण न तो स्थापित किया जा सका है और न ऐसा उद्देश्य ही प्रतीत होता है। फिजूलखर्ची अब विज्ञापनबाजी, बेनर, पम्पलेट, बेज, सामूहिक प्रीतिभोज, विशाल शामियानों, ठहरने आदि की व्यवस्था व राजनेताओं की अगवाई पर किए जाने वाले खर्चों के रूप में हो रही है। इसके लिए पिछले दिनों श्वेताम्बर जैन सामूहिक विवाह समारोह को उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है, जिसमें कुल तीन सौ व्यक्तियों का पंजीयन हुआ, लेकिन विवाह पाँच ही हो सके, जिसमें से दो विवाह तो पुनर्निर्धारित ही थे। कुल मिलाकर ऐसे अधिकांश समारोहों में प्रति विवाह खर्चा औसतन उतना ही हो जाता है। खर्चा कुछ मामलों में भले ही कम हो जाता हो, लेकिन बैंडबाजों, हाथी-घोड़ों, सजावट, दहेज, निकासी, विदाई, मौसर, कन्यादान, बिनौरी, आरती, जुआजुई आदि पर पैसा उसी प्रकार खर्च किया जाता है व कुरीतियों को पूरा किया जाता है। सच तो यह है कि यही सब कुछ करने के बहाने आयोजक आवश्यकता से बहुत अधिक पैसा चंदे के रूप में प्राप्त करते हैं, जिसका कहीं कोई हिसाब न तो वैधानिक रूप से अंकेक्षित ही होता है और न ही आयोजक किसी के प्रति जिम्मेदार होते हैं। कटु यथार्थ तो यह है कि धीरे-धीरे सामूहिक विवाह करवाना एक व्यवसाय होता जा रहा है। भ्रष्टाचार करने का वास्तव में यह एक सम्मानित तरीका हो गया है।

इन समारोहों में युवक-युवतियों का परिचय जिस प्रकार से करवाया जाता है वह याचना करने से किसी भी रूप में कम नहीं होता है। सार्वजनिक रूप से लड़की को मंच पर खड़ा कर उससे उम्र, शैक्षणिक योग्यता, आदतों, पारिवारिक पृष्ठभूमि, रिश्तेदारों, अपनी पसन्द के लड़के, साथ निभाने के वादे

आदि के बारे में जिस प्रकार प्रश्न किए जाते हैं वह किसी भी रूप में मानसिक यातना दिए जाने से कम नहीं है। सूचनाओं से सम्बन्धित पुस्तिकाओं की प्रामाणिकता का न कोई आधार होता है और न इसे गम्भीरता से लिया जाता है। यही कारण है कि ऐसे समारोहों में कई शराबी, जुआरी, शादीशुदा, अनपढ़ व व्यसनी विवाह करने में सफल हो गए हैं, क्योंकि एक बार सामने देखकर व्यक्ति के आचरण, स्तर, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, गौत्र आदि के बारे में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है तथा आयोजक संख्या बढ़ाकर अपना प्रभाव बढ़ाने के चक्कर में ग्रामीण क्षेत्रों से आए भोले-भाले नागरिकों को थोथे सब्जबाग दिखाकर व आश्वासन देकर विवाह करने को एक प्रकार से मजबूर कर देते हैं। सुनने को यहाँ तक मिलता है कि दोषपूर्ण लड़कों या पुरुषों को वधू दिलवाने के आयोजक पहले से ही सौदे कर लेते है। कुल मिलाकर अधिकांश विवाह बेमेल ही होते हैं, इसीलिए स्वाभाविक रूप से सफल भी कम ही हो रहे हैं।

आश्चर्यजनक रूप से ऐसी संस्थाओं जो व्यक्ति के जीवन का फैसला करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का दावा करती हैं, किसी प्रकार की सम्बन्धित जिम्मेदारी लेती ही नहीं हैं। वर या वधू पक्ष में से किसी के साथ भी धोखा हो जाने पर आयोजकों के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया जा सकता है। ऐसे विवाह समारोहों की उपयोगिता तब ही कुछ हो सकती है जब सरकार कानून बनाकर विवाह का पंजीयन करवाने, दोनों ही पक्षों द्वारा दी जाने वाली सूचनाओं को शपथ पत्र के रूप में प्रस्तुत किए जाने, आयोजकों की जिम्मेदारी को निर्धारित करने, व्यय राशि का हिसाब मान्यता प्राप्त सी.ए. से अंकेक्षित करवाने, न्यूनतम निर्धारित प्रतिशत वर-वधुओं की संख्या आयोजकों या उनके सम्बन्धियों की ही होने, सामूहिक प्रीतिभोज में अधिकतम संख्या की सीमा लगाने की ओर कदम उठाए। आयोजकों को भी ऐसे व्यक्तियों के लड़के-लड़कियों को शामिल नहीं करना चाहिए जो प्रचार व सामाजिक सम्मान के लिए तो सामूहिक विवाह व्यवस्था में विवाह रचवाते हैं व पर्दे के पीछे दहेज के लिए सौदेबाजी व खुलेआम अलग से प्रीतिभोज देने जैसे कार्य करते हैं। सभी वर-वधुओं की पूरे तामझाम के साथ हजारों लोगों के साथ

भरे बाजारो मे सवारी निकालना किसी भी रूप में मर्यादित नहीं कहा जा सकता है। वैसे तो कन्यादान, पर्दे में फेरे, पति को परमेश्वर मानने की प्रतिज्ञाओ से बचने के प्रयत्न किए जाने चाहिए और ऐसा यदि होता भी है तो कन्यादान की रस्म किसी राजनेता, अनैतिक व्यक्ति या किसी अन्य कारण से कुख्यात व्यक्ति से तो नहीं ही करवानी चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि ऐसे विवाह समारोहो को अधिक उपयोगी व लोकप्रिय इन्हे आडम्बरहीन व कम खर्चीला बना कर, आयोजको की वास्तविक सहभागिता बढाकर व प्रचार से दूर रख कर ही बनाया जा सकता है, जिसके लिए जन सामान्य का जागरूक होना बहुत जरूरी है।

□□□

14

सैक्स का व्यापार : कारण, क्या केवल पैसे की मार ?

"अबोध बालिकाओ को वेश्यावृत्ति के लिए बेचा", माँ ने पुत्री को धंधे के लिए विवश किया", "रगरेलियाँ करते चार जने गिरफ्तार", "विश्वविद्यालय परिसर में कॉल गर्ल्स का फैलता जाल", "कॉल गर्ल्स की संख्या मे दस गुना वृद्धि", "सडकों के किनारे वेश्याओं के फैलते अड्डे" यह कुछ समाचार शीर्षक हैं जो समाचार पत्रों में आम होते जा रहे हैं। दूसरी ओर पिता या भाई द्वारा पुत्री या बहन से बलात्कार, अध्यापक या गाइड द्वारा मासूम छात्रा या परिपक्व रिसर्च स्कॉलर से छेडछाड, राजनैतिक नेता या धनाढ्य व्यापारी से महिला कार्यकर्ता या कर्मचारी के अवैध सम्बन्ध, तीन बच्चों की माँ प्रेमी के साथ फरार, सौतेली माँ व पुत्र में नाजायज हरकत व डॉक्टर-नर्स के काले कारनामो के समाचार भी सुर्खियों में स्थान बनाने लगे हैं। इसी प्रकार स्कूल स्तर के बालक-बालिकाओं के बीच प्रेम प्रसंगो, यौन आकर्षण पर आधारित प्रेम विवाहो, तलाकों, अवैध गर्भपातों व जबरन योनाचार के मामलों की संख्या तेजी से बढती जा रही है। फिल्मों में सैक्स, पोशाक मे कामुकता व व्यवहार में खुलापन सीमाएँ लाँघ रहा है। संगीत के माध्यम से स्वतंत्र यौनाचार की शिक्षा देने वाले माइकल जैक्सन व बाबा सहगल युवा पीढी के आदर्श बनते जा रहे हैं। इस संदर्भ में चिन्तन नहीं, बल्कि चिन्ता की बात यह है कि सैक्स के प्रति हमारे विचारों में आधारभूत परिवर्तन हो रहा है या इसका शोषण बढ रहा है ? जो भी परिवर्तन हो रहे हैं उसके पीछे आखिर कारण क्या हैं ? क्या हमारा समाज भी निकट भविष्य में स्वच्छंदता का

पर्याप्त चर्चा बनने जा रहा है ? यह कुछ ऐसे प्रश्न है, जिनके उत्तर पर हमारे भविष्य का बहुत कुछ टिका हुआ है।

भारतीय संस्कृति में सैक्स को एक पवित्र क्रिया के रूप में माना गया है। तब ही तो इस संबंध में प्राचीन ऋषियों तक ने विश्वविख्यात ग्रंथ लिखे हैं, जिनका स्थान धीरे-धीरे समाज की सोच तथा परिस्थितियों व जीवन के प्रति दृष्टिकोण में हो रहे परिवर्तन के कारण सैक्स पूजा का नहीं बल्कि व्यवसाय का माध्यम होता जा रहा है। वैसे तो जब से समाज रूपी संस्था का उदय हुआ है वेश्यावृत्ति का अस्तित्व रहा है तथा वर्तमान में भी ऐसा कोई राष्ट्र, राज्य या समाज नहीं है जिसमें इस बुराई का स्थान नहीं हो, लेकिन वर्तमान समाज में वेश्यावृत्ति के रूप जिस प्रकार बदलते जा रहे हैं, इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है व समाज की घृणा कम होती जा रही है, वह निश्चय ही चिन्ता का विषय है। एक अबोध बालिका, पुत्री, बहन या बहू से वह अनैतिक आचरण करवाने वाला मानव तो नहीं समझा जा सकता है। एक पत्नी के साथ व्यभिचार होता कौन देख व सहन कर सकता है ? माँ या बहन के पवित्र रिश्ते को देखते हुए उसे कमाई का माध्यम आखिर कोई क्यों बनाता है ? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है - पैसा ! फिर प्रश्न उठता है पैसा आखिर किस लिए ? जीवन चलाने के लिए या जीवन सजाने के लिए ? इस बुराई से जुड़े व्यक्तियों अर्थात स्वतंत्र वेश्याओं, मर्यादित वेश्याओं तथा उनसे सम्बन्धित दलालों व मालिकों की मनोवृत्ति, सोच व जीवन मूल्यों का गहन विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि यह कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग उद्देश्यों से किया जाता है।

यह जीवन का कटु यथार्थ है कि भूख व्यक्ति को कोई भी पाप करने को बाध्य कर देती है और गरीब की नैतिकता, धर्म व सदाचार पेट भरने की जुगाड़ करने तक ही सीमित होकर रह जाती है। यही कारण है कि महानगरी बम्बई में अधिकांश वेश्याएं भूटान, नेपाल, मणिपुर व दक्षिण भारत के अति पिछड़े प्रदेशों से आती हैं। अबोध बालिकाओं, त्याज्य गरीब महिलाओं को इस धंधे के लिए लुभाना बड़ा आसान होता है। जिन्दा रहने के लिए अपनी आत्मा को मारने का सौदा उन्हें करना पड़ता है। यह केवल संयोग ही नहीं है

कि भारत मे गरीबो, बेरोजगारो, भिखारियो व बीमारो की सख्या के साथ ही गर्म माँस का व्यापार व इससे सम्बद्ध लोगो की सख्या भी बढती जा रही है, जबकि सरकारी व गैर-सरकारी सुधार सस्थाओ, सामाजिक कार्यकर्ताओं व समाज सुधारको द्वारा इस क्षेत्र मे बहुत काम किया जा रहा है। एक अध्ययन के अनुसार बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, आगरा व मद्रास जैसे शहरो मे जिस्म फरोसी के धधे मे लगी अभागी महिलाएँ व बच्चियाँ एक ही दिन मे अनेको 'भेडियो' से मुकाबला करने के बाद भी केवल पेट की भूखाग्नि को ही बडी मुश्किल से शांत कर पाती है। यही हाल बाकी शहरो, कस्बो व गाँवो का है, जहाँ लाखों की संख्या मे पीडित परिवार व उपेक्षित प्रजातियाँ यह धधा करते रहने को विवश हैं। इसके अलावा भी समाज मे अपनी तथाकथित इज्जत बचाने के लिए कितनी मजबूर महिलाओं को पर्दे के पीछे अपनी इज्जत बेचनी पडती है इसकी गिनती करना असम्भव है। पिता व पतिहीन महिला जिसके पास अर्थ के नाम पर शून्य होता है अपनी इज्जत बचाते हुए पेट भरने की लाख कोशिश करे, केवल अपवाद स्वरूप ही सफल हो पाती है।

इस विवेचन से क्या यह निष्कर्ष निकाल लिया जाए कि ऐसा सब कुछ केवल पेट की भूख शांत करने के लिए ही किया जाता है? हो सकता है अधिकांश मामलों में ऐसा सही है, लेकिन समाज में जिस प्रकार के सामाजिक, आर्थिक व नैतिकता संबंधी परिवर्तन आ रहे हैं, उनसे व्यक्ति में स्तर, आधुनिकता, पहुँच व जीवन को जीने सम्बन्धी कई प्रकार की नई भूखें व तृष्णाएँ तेजी से उत्पन्न हो रही हैं। हर कोई एक-दूसरे से अधिक सम्पन्न, खुशहाल व प्रगतिशील दिखाई देना चाहता है। उपयोग की संस्कृति का विकास बहुत तेजी से ही नहीं बल्कि विनाशकारी तरीके से हो रहा है। हर कोई (विशेष रूप से मध्यम आय वर्ग वाला व्यक्ति) जल्दी से जल्दी अपने घर में फ्रिज, टीवी, टेलीफोन, टेपरिकार्डर व सोफा आदि लाना, बच्चों को पब्लिक स्कूल में पढाना, विवाह की सालगिरह व जन्म दिन मनाना, हिल स्टेशन पर जाना, महँगी पार्टियाँ देना, स्वयं का मकान बनाना तथा हर प्रकार से अपने स्टेट्स को बनाना चाहता है, क्योंकि मनुष्य की आदत अपने से नीचे वाले को नहीं बल्कि ऊँचे वाले को देखने व उससे होड़ लेने की होती है। ऊँचा

दिखने की इस होड़ को जीतना तो बहुत दूर की बात है, इसमें बने रहने के लिए ही बहुत मेहनत की आवश्यकता होती है, जिसके लिए हम सब में विरक्ति बढ़ती जा रही है। हम आधुनिकता की लहर में इतने आहत हैं कि कुछ करके कुछ प्राप्त करना हेय व बिना कुछ किए ही सब कुछ प्राप्त कर लेना सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन इस प्रकार जीवन में 'सफल' कुछ ही व्यक्ति हो पाते हैं। स्पष्ट कहा जाए तो ऐसी सफलता भ्रष्टाचारियों, काला-बाजारियों व मुनाफाखोरों को ही मिल पाती है। ऐसे में बहुत अधिक महत्वाकांक्षी व्यक्ति इस सरल रास्ते को चुनते हैं। सामान्यतया इस बात का रोना रोया जाता है कि प्रभावशाली राजनीतिज्ञ, अफसर, बुद्धिजीवी व व्यवसायी अपने अधीन कार्यरत महिलाओं का यौन शोषण करते हैं तथा इस बात में सत्यता का अंश भी बहुत अधिक है, लेकिन प्रश्न उठता है क्या यह सब कुछ हर बार किसी दबाव में ही होता है? चुनावों से पूर्व पार्टी टिकट माँगने के लिए लाइन लगाने वाली, दूसरे का हक मारकर तुरन्त तरक्की चाहने वाली, बिना कुछ किए व स्तरहीन होने पर भी पी एचडी उपाधि की चाहना रखने वाली, बिना योग्यता व अनुभव के नौकरी चाहने वाली महिलाओं के संबंध में ऐसा नहीं माना जा सकता है। यही हाल सिनेमा व दूरदर्शन के पर्दे पर अपनी एक झलक भर देखने, बिना काम के सरकारी सहायता प्राप्त करने, निर्धारित मानदंडों को पूरा किए बिना विद्यालय की मान्यता लेने, अनुचित रूप से सरकारी पुरस्कार या सम्मान चाहने की आकांक्षा रखने वाली महिलाओं का है।

पश्चिमीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति, आधुनिकीकरण की गलत धारणा, संचार माध्यमों में हो रही क्रांति, घटती जा रही भौगोलिक दूरियाँ, महिला आंदोलनकारियों के बढ़ते जा रहे प्रभाव, स्त्री-पुरुष की बढ़ती समानता, नौकरीपेशा महिलाओं की बढ़ती संख्या जैसे कारण भी यौन विकृतियों व स्वच्छंद यौनाचार के लिए जिम्मेदार हैं। जहाँ दबाव वाला तत्व महत्वपूर्ण होता है। जीवन में बढ़ती जा रही आपाधापी, समयाभाव, कमाने की बढ़ती जा रही अनावश्यक लालसा, अहम् का टकराव, कभी शांत नहीं हो सकने वाली भौतिक वस्तुओं की लालसा आदि कारण भी अनैतिक आचरण को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आज स्कूल के छात्र-

छात्राओं में योनाकर्षण बढने के लिए किसे दोषी ठहराया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से फिल्मों व टेलीविजन कार्यक्रमों को। जैसे-जैसे हमारा रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, शिक्षा व्यवस्था व सामाजिक पर्यावरण पश्चिमी सोच के अनुरूप होता जा रहा है। यौन प्रवृत्तियों की स्वतत्रता ही नहीं, बल्कि स्वच्छंदता के बढने को रोका नहीं जा सकता है, इसलिए जीवन के यथार्थ को स्वीकार करके ही कुंठा, असंतोष व द्वद्व रहित जीवन की कल्पना की जा सकती है। सरकारी कानूनों, सामाजिक मर्यादाओं व सामूहिक दबाव से जीवन धारा को कुछ ही समय रोककर रखा जा सकता है, लेकिन उसे हमेशा के लिए बाँध कर नहीं। यौन शोषण से मुक्ति के लिए गरीबी, बेरोजगारी व पिछडेपन की समाप्ति के अलावा कोई विकल्प नहीं है। स्वेच्छापूर्ण स्वछंदता को न तो रोका जा सकता है और न रोका ही जाना चाहिए, क्योंकि किसी के विचारों, क्रियाकलापों व नैतिक स्तर पर आक्रमण करना किसी व्यभिचार से कम नहीं है। इस समस्या के हल के लिए केवल कानून बनाने, भाषण देने व सरकारी पैसा बहाने से काम चलने वाला नहीं है। आवश्यकता है समाज में इस संबंध में जागृति पैदा करने, मजबूर महिलाओं, परिवारों व प्रजातियों के सामाजिक, शैक्षणिक व आर्थिक स्तर में वृद्धि करने, यौन शिक्षा को प्रोत्साहित करने, महिला-पुरुष सम्बन्धों को स्वाभाविक मानने व प्रचलित कानूनों को वस्तुनिष्ठ भाव व तत्परता से लागू करने की। तब भी समस्या के अन्त की नहीं बल्कि कुछ नियंत्रण की ही आशा की जा सकती है।

□□□

15

आधुनिकता की अंधी दौड़ : सबकी बर्बादी की बस होड

आधुनिकता, ऐसा शब्द है जो हर एक को आकर्षित करता है और हर कोई आधुनिक दिखना चाहता है। आम भारतीय आधुनिकता का अर्थ केवल पश्चिमी पहनावे, स्वच्छंद आचरण, पुरानी परम्पराओं व मान्यताओं के विरोध, अंग्रेजी भाषा व भारतीयता के विरोध में ही लेता है। इसी से प्रभावित होकर हमारे समाज में शराब, सिगरेट, प्रेम विवाह, तलाक, एकल परिवार, विवाहेत्तर यौन सम्बन्धों, सह नृत्य, स्वच्छंद योनाचार आदि प्रवृत्तियाँ तेजी से बढ़ती जा रही है। पश्चिमी नृत्य, गानों व फिल्मों की युवा पीढ़ी दिवानी होती जा रही है। अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों, ब्यूटी पार्लरों, फैशन परेडों, सौंदर्य प्रतियोगिताओं, शराब पार्टियों, सैक्स पत्रिकाओं, विपरीत लिंग वालों से मित्रता का चलन रफ्तार पकड़ रहा है। स्त्रियों में शराब, सिगरेट व अन्य नशीले पदार्थों का सेवन, विवाहित जोडों में विनिमय यौन सम्बन्ध, सम्भ्रान्त वेश्यावृत्ति, अश्लील साहित्य व दृश्य-श्रव्य साधनों के प्रति घृणा कम होती जा रही है। प्रश्न उठता है कि क्या इस सबको ही आधुनिकता कहते है ? और यदि यही आधुनिकता है तो क्या हमें परिवर्तन ही जीवन है व दौड़ने का दूसरा नाम ही जीवन है के आदर्श को मानकर इसे अपनाना चाहिए।

आधुनिकता वास्तव में मूल रूप से विचारों से आनी चाहिए। इसका मतलब छुआछूत, दहेज प्रथा, नारी उत्पीड़न, लिंग भेद, पर्दाप्रथा, अनावश्यक दिखावा, बेमेल विवाह जैसी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करना है। आधुनिक व्यक्ति में जाति प्रथा, साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, क्षेत्रीयता, भाषाई संकीर्णता

के विरोध किए जाने की अपेक्षा की जाती है, लेकिन हमारी वास्तविकता क्या है ? हर मामलों में हमारा आचरण दोहरा है। हम आधुनिक बनना नहीं बल्कि दिखना भर चाहते हैं। दुर्भाग्य से दहेज की बुराई सम्भ्रांत, पढे-लिखे व सुसस्कृत कहे जाने वाले लोगों में ही बढती जा रही है। लोग टाँगों में जीन्स, कानों में बाली, खुले बटन की कमीज पहन व बाल बढा कर अपने आपको आधुनिक कहलवाने का चाव रखते हैं। इससे पीड़ित भी उसी लड़की के माता-पिता अधिक होते हैं, जो ऊँची ऐडी के सैन्डल, नाभी के नीचे साड़ी, कट स्लिव्ज का ब्लाउज या पुरुषों से मिलती पोशाक पहन कर उस बदन पर इतराती रहती है जो प्राकृतिक रूप से नहीं बल्कि ब्लिच, फेसियर व बाल सज्जिका के बल पर सुन्दर दिखना भर है। दहेज के खुले बाजार में भारतीय प्रशासनिक सेवा, सी.ए., डॉक्टर्स, प्रोफेसर, इंजीनियर जैसे अधिकारियों, अमेरिकी ग्रीन कार्ड धारकों, राजनीतिज्ञों के रिश्तेदारों आदि की खरीद की बोली ऐसे ही तथाकथित आधुनिक लोग लगाते हैं। दहेज के कारण उत्पीड़न, मनमुटाव व तलाक के मामले ऐसे ही परिवारों में ज्यादा बढ रहे हैं। दिखावे की आधुनिकता के लिए ऐसे परिवारों में ही नारी को शराब पीने, माँसाहार को अपनाने, पराये मर्द के साथ नाचने, स्वच्छंद तबियत वालों की पार्टियों में हिस्सा लेने व पर्दे की ओट में पता नहीं क्या-क्या करने को मजबूर किया जाता है ? ऐसे ही घरों में देवर-भाभी, जीजा-साली ही नहीं, बल्कि रिश्ते की भाई-बहन के सम्बन्ध भी विकृत होते जा रहे हैं। भावना व संवेदना की शून्यता यहाँ ही ज्यादा महसूस की जाती है। अगर यही आधुनिकता है तो इसे नहीं अपनाना व इस पर नहीं इतराना ही अच्छा है।

भारत में अंग्रेजी में बोलना आधुनिकता की पक्की निशानी माना जाता है, लेकिन ऐसे आधुनिकों की सही दशा का चित्रण किया जाए तो दया आए बिना नहीं रह सकती है। पब्लिक स्कूलों में पढने वाले अधिकांश विद्यार्थी शुद्ध अंग्रेजी की बात तो बहुत दूर है, सामान्य अंग्रेजी भी मुश्किल से ही बोल पाते हैं। वे हल्लो, हॉय, बॉय, ओके तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। अंग्रेजी वे सीख नहीं पाते हैं व हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा बोलते नहीं हैं। इस तरह उनकी स्थिति एक त्रिशंकु जैसी होकर रह जाती है। वे अपनी इस हीन

भावना को दबाने के लिए बिना वजह बालों व नाखूनों को बढ़ाने, कानों को बिदवाने, महिलाओं जैसे कपडे पहनने जैसे अंटसंट कामों में लगे रहते हैं। आधुनिकता के इस चक्कर में लोग अपने मासूम बच्चो का वर्तमान और भविष्य दोनो ही वर्बाद कर रहे है। समय पूर्व स्कूल में भर्ती करवाने, विदेशी भाषा सीखने को मजबूर करने, आया के सहारे जीने को छोड़ देने को आधुनिकता कहने का क्या मतलब है ? इसी के नाम पर बच्चों को दूध पिलाने से परहेज करने, उन्हे प्यार-दुलार से वंचित करने, स्लिम होने के चक्कर में काया को सुखा देने व रोग पाल लेने, किटी पार्टियो के कारण पारिवारिकजनों के सान्निध्य से दूर रहने, पति या पत्नी से विमुख होकर कहीं अन्य 'आनन्द' के लिए भटकने, सगे-सम्बन्धियों से अलग रहने को तो दासता के मार्ग पर चलना ही माना जाएगा। कैसी अजीब स्थिति है, स्वच्छंद विचरण करने की चाह रखने वाली 'आधुनिक' चुगलखोरी करने, सास-बहू व ननद-भाभी के रिश्तों से आहत होने से बच नही पा रही है, पराई स्त्री की स्वस्थ स्वतंत्रता भी उससे सहन नही हो पा रही है, अपने पति द्वारा दूसरी स्त्री से हँस कर बात भी कर लेना उसे रास नही आता है। माँग से सिन्दूर, पैर में पायजेब, गले में मंगलसूत्र, अंगुली में चुटकी वह उतार नहीं पा रही है। कारण स्पष्ट है - आम महिला विचारो से आधुनिक यानि विकासवादी सोच रख ही नहीं पा रही है। उसका उद्देश्य केवल आधुनिक दिखनाभर है। ऐसे ही दिखावे के शिकार अधिकांश आधुनिक कहे जाने वाले पुरुष है। बातचीत में अल्ट्रा मॉडर्न होने का दावा करने वाले पुरुष अपनी बहन या पत्नी को अनजान पुरुष से बातचीत करते, प्रेम विवाह की हठ करते, पढने के लिए अकेले रहने का आग्रह करते ही आपे से बाहर हो जाते है। यह आधुनिकता का उपहास नहीं तो क्या है ?

झूठी आधुनिकता ने हमारे समाज को किस विकृत्ति तक पहुँचा दिया है इस पर विचार करना समय का सबसे बडा तकाजा हो गया है। आज फ्लुलस, फेन्टेसी व बी.एम एड्स जैसी पत्रिकाएँ यौनाचार प्रसारक का काम खुलेआम कर रही है। मशाज व पार्लरो की आड में वेश्यालय चल रहे हैं। समूह में ब्ल्यू फिल्मे देखी जा रही है, दस वर्ष की बालिका से 'चोली के पीछे क्या है' गाने पर नृत्य करवा कर माता-पिता इतरा रहे हैं व बच्चों के साथ बैठ

कर घर के बुजुर्ग 'ए' श्रेणी की फिल्में देख रहे हैं। ब्वाय व गर्ल फ्रेण्ड होना, प्रत्येक प्रकार का नशा करना, समझ में नहीं आने पर भी अंग्रेजी फिल्मे देखना, शादी के तुरन्त बाद हनीमून पर जाना, बच्चों को स्तनपान नहीं करवाना, आधुनिकता की पहचान हो गया है। इस कारण से बच्चा शारीरिक विकास से वंचित व असहाय रोगों से पीड़ित हो जाता है, आधुनिक माताओं को इसकी कोई चिन्ता नहीं है। किटी पार्टियाँ समय की वर्बादी ही नहीं वल्कि जुआ, शराव, अश्लीलता व लापरवाही की प्रेरक स्थल भी होती जा रही हैं।

आधुनिकता से प्रेरित नारी स्वतंत्रता आंदोलन के कारण सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था किस प्रकार छिन्न-भिन्न हो रही है इस पर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। एकाकी परिवारों के बढते चले जाने के कारण वृद्धों व बच्चों की उपेक्षा, पति-पत्नी में आपसी तनाव, परिवारों की दूरियाँ बढती जा रही हैं। सामाजिक नियंत्रण, लोकलाज, बडों की तहजीब जैसे तत्वों का तो महत्त्व समाप्त सा ही हो रहा है। हर कोई तनावग्रस्त नजर आ रहा है। आश्चर्य है महिलाएं झाडू व पोंछा लगाने के स्वाभाविक व्यायामों को छोड कर जिम का सहारा ले रही हैं। स्टेंडिंग रसोई के कारण हिप्स की मोटाई, कमर की चौडाई व पीठ तथा कमर के दर्द को बढा रही हैं। निजी जिन्दगी में खलल नहीं पडे इसलिए बच्चों को छात्रावासों में भर्ती करवा रही हैं। अब तो धीरे-धीरे अविवाहित रहने पर भी मातृत्व का 'सुख' भोगने वाली साहसी बालाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। सरेआम सिगरेट या शराव पीना, पर-पुरुष से आलिंगनबद्ध होना, विवाह की आयु निकल जाने के बाद इस रस्म की पूर्ति करना, आधुनिकता की निशानी समझा जाने लगा है।

आधुनिकता की इस दौड़ ने हमारे सभी सुसंस्कार, आदतें व रीति-रिवाज छीन लिए हैं। हम जल्दी सोना, जल्दी उठना, उठते ही पानी पीना, मल त्याग के लिए जाना, माता-पिता को प्रणाम करना आदि सब कुछ भूलते जा रहे हैं। आश्चर्य है केवल आधुनिक दिखनेभर के लिए हम आयुर्वेदिक जैसी हानिरहित व हजारों वर्षों से आजमाई हुई चिकित्सा पद्धति को भूल कर हर प्रकार से हानिकारक एलोपैथी को अपना रहे हैं व फैमिली डॉक्टर नियुक्त कर रहे हैं। जैसे बीमार तो हमें हमेशा रहना ही है। हम ऐसे हर काम को दकियानूसी मानने लगे हैं जिससे बीमार

होना ही नहीं और महँगा इलाज करवाना भी हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ गया है। आज परम्परागत त्यौहारो से अधिक महत्वपूर्ण बडा दिन हो गया है। हमारी मानसिकता ही हर उस बात की खिल्ली उडाना जो भारतीय है व उसे स्वीकार करना जो विदेशी है, की हो गई है।

इस बेसमझ आधुनिकता से समाज मे तनाव, कुंठाओ, नीरसता, अकेलापन, हीन भावना को ही बढावा मिला है, क्योंकि केवल आचरण, दिखावा व जबान तक ही तथाकथित आधुनिकता आ रही है। इससे विचार आधुनिक नही हो सके है। हम वास्तव में त्रिशंकु बन कर ही रह गए हैं।

□□□

16

युवाओं में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति : समाज कितना दोषी ?

इन दिनों आत्महत्या के मामले इतने अधिक बढ़ते जा रहे हैं कि दैनिक समाचार पत्रों में इनके समाचारों के बीच संस्था चुनाव, धरना प्रदर्शन व नगर में आज जैसे ही स्तम्भ बनने लगे हैं। इस सम्बन्ध मे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि ऐसी घटनाओं से आम व्यक्ति ने अचम्भित, दुखी व सम्बद्ध होना ही बंद कर दिया है। प्रश्न उठता है, क्या आत्महत्या करना किसी का व्यक्तिगत मामला है या सामाजिक समस्या ? यह चाहे जो कुछ भी है इसको रोकने की चिन्ता प्रत्येक व्यक्ति, समाज व सरकार को होनी चाहिए, इस तथ्य को इनकार नहीं किया जा सकता है, लेकिन कुछ भी सकारात्मक करने से पूर्व उसके कारणों को जानना अति आवश्यक है। इसके लिए समाज शास्त्रीय सोच, वर्तमान के सामाजिक यथार्थ व जीवन के विभिन्न पक्षों की गहराई से जानकारी का होना जरूरी है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिक के अनुसार आत्महत्या अपनी इच्छा से और जानबूझकर की जाने वाली आत्म हनन की क्रिया है। यानी यह किसी की व्यक्तिगत व स्वैच्छिक क्रिया है। दूसरी ओर प्रसिद्ध समाजशास्त्री दुरखीम सहित अधिकांश विद्वान इसे सामाजिक घटना मानते हैं, क्योंकि आत्महत्या व्यक्ति पर उसके समूह के एक अस्वस्थ दबाव का ही परिणाम होती है। इसीलिए माना यह जाता है कि आत्महत्या स्त्रियों की तुलना में पुरुष, ग्रामीण की तुलना में शहरी, विवाहितों की तुलना में अविवाहित, सुहागिनों की तुलना में विधवाओं तथा संतान वालों की तुलना में निसंतान वालों द्वारा अधिक की जाती है। इन निष्कर्षों को मोटे रूप में मान लिया जाए तो

आत्महत्या स्वत सामाजिक परिणतियो से प्रभावित ऐसी व्यक्तिगत क्रिया हो जाती है, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्पूर्ण समाज पर पड़ता है, इसलिए इस समस्या का हल खोजने का दायित्व भी समाज पर आ जाता है।

पिछले दिनो जयपुर मे प्रेमी-प्रेमिका द्वारा एक साथ आत्महत्या करने से पूर्व कथाकथित रूप से विवाह रचाने से प्रेमिका द्वारा सुहाग के प्रतीक वस्त्र, चूडियाँ, मगलसूत्र व माँग को धारण करने, मरने से पूर्व एक दूसरे के गले लिपटने व स्वेच्छापूर्वक ऐसा कृत्य किए जाने सबधी पत्र लिख कर जाने की जैसी घटनाएँ बढ रही है। उसे दो पीढियो मे बढते अन्तर, युवाओ मे स्वतंत्र निर्णयो के लिए बगावत करने की बढती प्रवृत्ति, परम्परागत भारतीय विचारो पर बढते पश्चिमी प्रभाव, टेलीविजन की चकाचौध मे चिन्तनपूर्वक निर्णय लेने की घटती क्षमता व प्रेम करने वाले हर युवा को गलत समझने की धारणा के सदर्भ मे देखने से ही कारणो को कुछ गहराई से समझाया जा सकता है। जिस लडका-लडकी का प्रेम इतनी कुर्बानी देने की ऊचाइयां छू चुका हो और जिनके माता-पिता, नजदीकी रिश्तेदार, मित्र व समाज केवल अपने थोथे अहम्, तथाकथित बदनामी, जाति बन्धनो के प्रपचो व किसी आर्थिक लाभ के लालच मे इस यथार्थ को जानबूझ कर स्वीकार नही करे, प्रेमी युगल के सामने घर छोडकर चले जाने या दुनिया ही छोड देने के अलावा विकल्प बचता भी क्या है ? हमारा समाज जिस सक्रमण काल से गुजर रहा है उसमे सामाजिक व पारिवारिक परम्पराओ, यौन सम्बन्धो पर सीमाओ, परिवार व समाज से जुडे रहने की मजबूरियो व समाज पर व्यक्ति की निर्भरता जैसे तत्वों मे आधारभूत अन्तर नही आया है। इसी कारण से युवा अपने प्रेम का सार्वजनिक प्रदर्शन करने, वयस्क के रूप मे मिले अधिकारो का उपयोग करने, प्रेम को न्यायालय के माध्यम से विवाह मे बदलने, विरोध करने वालो से तर्कपूर्ण वार्ता करने व घर से बाहर निकलने देने जैसे बधनो का प्रतिकार करने का साहस नही जुटा पाता है। दूसरी ओर आज का युवा परिणाम प्राप्ति की शीघ्रता मे इन्तजार, सहनशीलता व समन्वय जैसे शब्दो का अर्थ ही भूलता जा रहा है। इसी आतुरता मे वे आत्महत्या के विकल्प को ही चुन लेते है।

युवाओ मे आत्महत्या मे हो रही वृद्धि दर के लिए टेलीविजन के

माध्यम से स्वछंदतापूर्वक परोसी जा रही हिंसा, कामुकता, हर प्रकार की परम्पराओं का विरोध करती आधुनिकता व वर्जनाओ को हर कीमत पर तोडने की सीख जिम्मेदार है। स्वाभिमान, जुनून, शाति जैसे प्रत्येक मेघा सीरियल में वह सब कुछ करने की प्रेरणा दी जाती है जिसे हमारे समाज मे करना एक प्रकार से असम्भव सा ही है। इन सीरियलों में सैक्स के लिए प्यार के ढोंग, विवाहेत्तर सैक्स सम्बन्धो, एक ही समय में एक से अधिक व्यक्तियो से सम्बन्ध, ब्लैकमेल, पैसे के दम पर पराई स्त्री या पुरुष खरीदना या बाप के सामने बच्चों द्वारा अपने प्रेम सम्बन्धों की खुल कर चर्चा करना, पैसे के लिए जिस्म बेचने के अलावा क्या दिखाया जाता है? भारतीय समाज की दृष्टि से सरासर ऐसे झूंठे चरित्रों से करवाई गई स्वाभाविक एक्टिंग के अनुसार युवक-युवतियाँ जिन्दगी को नहीं पाती हैं तो उनमें कभी हल नहीं हो सकने वाली कुंठाएं जन्म लेती है। ऐसी परिस्थितियों का मुकाबला दृढ इच्छाशक्ति, तर्कपूर्ण सोच व उच्चाकांक्षाओं पर नियंत्रण से ही किया जा सकता है; जिनका सर्वथा अभाव होने के कारण अपने ही अस्तित्व को समाप्त करने का सरल लेकिन भीरुतापूर्ण रास्ता अपनाया जाता है।

यह तथ्य विडम्बनापूर्ण ही है कि साक्षरता, शिक्षा, आर्थिक विकास व आधुनिकता के साथ ही दहेज, मातृहीनता, विवाह विच्छेद, पारिवारिक विघटन व रोमान्स के कारण होने वाली आतमहत्याओं का ग्राफ भी उसी गति से बढता जा रहा है। दहेज के कारण आतमहत्याएँ व इसके लिए मजबूर करने की हरकतें दुर्भाग्य से शिक्षित, सम्भ्रांत व आधुनिक दिखने वाले परिवारों में ही अधिक हो रही हैं। आज समाज में दिखावे की प्रवृत्ति जिस प्रकार बढती जा रही है, उसी कारण से दहेज के दानव का प्रभाव भी बढता जा रहा है। बढती बेरोजगारी, शिक्षित की अनुपयोगिता व आम रूप से फैल रही अकर्मण्यता ने दहेज की विकृति को बढाया ही है। अमीर दिखने, अधिकाधिक वस्तुओं का उपभोग करने व हर एक को पीछे छोड देने की हवस ने विवाह के बाजार में आम लडके की कीमत को भी बहुत अधिक बढा दिया है, इसीलिए मिडलची परिवारों की उपेक्षित, उत्पीड़ित, उम्र में बडी, लेकिन स्वाभिमानी तथा माता या पिता विहीन लडकियों के सामने सभी विपत्तियों से हल का केवल उपाय

अपने को समाप्त कर लेने का ही रह जाता है। विवाह के बाद महिला को घर की जूती व उसके परिवार वालो को हेय समझने की मानसिकता से हम मुक्त नहीं हो सके है तथा दूसरी ओर टेलीविजन, समाचार पत्र व पत्रिकाओं के द्वारा नारी को विद्रोह करने की शिक्षा दी जा रही है, इसीलिए जरा सी मनचाही नहीं होने पर वास्तव में विद्रोह नहीं कर नारी आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती है। नये वातावरण ने नारी को साहसी, विद्रोही व सतर्क बनाने के स्थान पर भ्रम, भयभीत व निराश बना दिया है। लोकलाज, समाज व पुरुष की महत्ता उसे आज भी स्वीकार करनी पडी है। सतानहीन होना आज भी किसी बीमारी, शारीरिक दुर्बलता या पति की कमजोरी का परिणाम नहीं बल्कि भगवान का अभिशाप ही माना जाता है। कामकाजी, शिक्षित व प्रबुद्ध महिलाएँ संतानहीन होने की स्थिति मे सास, ननद, पति व समाज के तानों को स्वाभाविक रूप से सहन नहीं कर पाती है तथा प्रतिवाद करने का साहस जुटा पाना उस स्थिति मे उनके बस का होता नहीं है। ऐसे मे निराशा का रास्ता या क्रोध के कारण आत्महत्या को अपना लिया जाता है।

मानसिक कारणों से होने वाली आत्महत्याओ की संख्या भी असामान्य रूप से तेजी से बढती जा रही है। यहाँ संवेगात्मक अस्थिरता, निराशा, हीन भावना, मद बुद्धि व मानसिक रोग जैसे कारणों को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। नौकरी के लिए दी गई परीक्षा मे असफल होने, साथियो के सामने किसी द्वारा डाट दिए जाने, मोटर साईकिल के क्रय के लिए राशि उपलब्ध नहीं करवाने या शराब आदि के उपयोग पर प्रतिबंध लग जाने जैसे कारण पर आत्महत्या होने की घटनाएँ आज हो चली है। अच्छे स्कूलों में पढाई के नाम पर दो-अढाई साल के बच्चो को स्कूल भेजने, होम वर्क, नियमितता व अनुशासन के नाम पर उन्हे दबाए रखने, हर बच्चे से हर क्षेत्र में शीर्ष सफलता की अपेक्षाएँ रखने, उन्हे आया या टीचर के भरोसे छोड़ देने, बहुत छोटी उम्र से ही छात्रावास के हवाले कर देने व व्यस्त माता-पिता द्वारा उन्हे प्यार किए जाने की औपचारिकता भर निभाने जैसे परोक्ष कारणों से उनकी मानसिकता विद्रोह या हताशा की हो जाती है। दोनो ही स्थितियो में जरा से विपरीत वातावरण मे आत्महत्या की आशकाएँ बहुत अधिक बढ जाती है। बेमेल

विवाह, विवाहोपरात आपसी तालमेल के अभाव, कार्यशील पति या पत्नी द्वारा किसी अन्य के साथ सम्बन्धों की घनिष्ठता व पत्नी द्वारा पति से आगे बढ़ जाने जैसे कारण वर्तमान में विवाहित व्यक्तियों को आत्महत्या के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

खुलेपन की ओर तेजी से बढ़ रहे सामाजिक जीवन, उन्मुक्तापूर्ण प्रदर्शनों व थोथी आधुनिकता के चक्कर में नजदीकी मित्र व रिश्तेदार, फेमेली डॉक्टर व अध्यापक, आफिस के कर्मचारी व नौकर तक कम आयु की लड़कियों से मैत्रस सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो जाते हैं। दुर्भाग्य से ससुर व बहू, चाचा व मामा के बच्चों, देवर व भाभी, यहाँ तक कि सौतेली माँ या बेटी से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होना आम बात सी हो गई है। ऐसे सम्बन्धों का रहस्य खुलने पर मूल रूप से रूढ़िवादी इस समाज में आत्महत्या स्वत श्रेष्ठ विकल्प बन जाता है। धनी होने के लिए नए पीढ़ी के लोग शरीर, ईमान, रिश्ता, नैतिकता, आपसी विश्वास सबका सौदा करने को तैयार हो जाते हैं, लेकिन वांछित सफलता नहीं मिलने पर कानून व समाज के डर से इस भीरुतापूर्ण रास्ते को चुन लेते हैं। इन परिस्थितियों में आत्महत्या को किसी भी रूप में किसी का भी व्यक्तिगत मामला नहीं माना जा सकता है। यह एक सामाजिक बुराई है जो सामाजिक मान्यताओं के परिवर्तन के इस संक्रमण काल में युवाओं में ज्यादा बढ़ रही है, जिसे उन्हें गले लगा और अधिक बढ़ने से रोका जा सकता है, तिरस्कार करके नहीं।

□□□

17

देश बचाओ नारे का यथार्थ : बस आह्वानकर्ताओं का स्वार्थ

प्रथम आम चुनाव से लेकर आज तक प्राय प्रत्येक राजनतिक दल 'देश को बचाने' के लिए अपने नेता के हाथ मजबूत करने का आह्वान चुनावों व अन्य य सकट के समय करता रहा है। समय-समय पर देश में साम्प्रदायिकता, अलगाववाद, विदेशी आक्रमण, आतकवाद, विदेशी हस्तक्षेप आदि का भय दिखा कर चुनाव जीतने के लिए जनभावना के साथ खिलवाड किया जाता रहा है। इसी प्रकार गरीबी उन्मूलन, आर्थिक व सामाजिक असमानता की समाप्ति, सामाजिक न्याय, ग्रामीणो का विकास, स्वावलम्बन, महिलाओ को समान अधिकार, रोजगार, विस्तार जैसे नारे भी चुनाव शस्त्र के रूप में काम मे लिए जाते रहे है। वर्तमान मे काग्रेस विकास व स्थिरता, बीजेपी राष्ट्रीय अखण्डता व सस्कृति सुरक्षा, समाजवादी व जनता दल सामाजिक न्याय के मुद्दो को उछाल रहे हैं। पिछले दशको म आम जनता की उन्नति के लिए समाजवाद, अन्त्योदय, बीससूत्री कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, पिछडे का पहल, नेहरू व जवाहर रोजगार योजनाएँ, राष्ट्रीय ग्राम-रोजगार कार्यक्रम जैसे पता नही अरबो रुपया की कितनी योजनाएँ क्रियान्वित की गई। महिला, श्रम, शिक्षा रोजगार से लेकर सस्कृति तक की नीतियाँ घोषित कर दी गई। गुप्तचरी, आन्तरिक सुरक्षा, प्रतिरक्षा व अति-विशिष्ट व्यक्तियो की सुरक्षा के नाम पर अकल्पनीय राशि व्यय की जा रही है। इन सबके बावजूद जिस देश को बचाने का नारा आज भी लगाया जा रहा है, प्रश्न उठता है उसमें बचाने को रह ही क्या गया है ?

क्या हम भ्रष्ट, अक्षम, उत्तरदायित्वहीन व संवेदनहीन हो चुकी प्रशासनिक व्यवस्था, बेरोजगारी, उच्छृंखलता, उन्माद व दायित्वहीनता का कारखाना बन चुकी शिक्षा व्यवस्था, विषमता, विद्वेष, विग्रह व विखण्डन का पर्याय बन चुकी सामाजिक व्यवस्था, हिंसा, अत्याचार, अश्लीलता, कामुकता की ओर तेजी से बढ़ रही संस्कृति को बचाना चाह रहे हैं ? क्या हम चाहते हैं कि निरन्तर रूप से गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता, बीमारी, असमानता बढ़ाती जा रही अर्थव्यवस्था, गरीबों, ग्रामीणों व असहायों का उपहास उड़ाती चिकित्सा व्यवस्था, अपराधियों, असामाजिक तत्वों, पाखंडियों व स्वार्थियों की गिरफ्त में आती जा रही चुनाव व्यवस्था, हंगामों, बहिष्कार, मारपीट, धरनों के अड्डे बनती जा रही विधायिकाओं को बचाने के लिए किसी के हाथ मजबूत करते रहें ? क्या हमारी चाहत यह है कि हमारे प्यारे देश में केवल घोटालों, षडयंत्रों, तिकड़मबाजी, बयानबाजी, थोथे दौरों में व्यस्त रहने वाले राजनेताओं की राजनीति, मनोनयन, तदर्थवाद, परिवारवाद व जातिवाद पर आधारित दलीय व्यवस्था, धर्मोन्माद, प्रतिशोध, आडम्बर व कट्टरपंथ को बढ़ाने वाली धर्मनिरपेक्षता, हत्या, डकैती, बलात्कार, आतंक, अपहरण, तस्करी, हिंसा को बढ़ते हुए देखती भर रहने वाली शासन व्यवस्था, फूलती-फलती रहे ? क्या हम गुण्डों को संरक्षण, गिरोहों को सूचना, शरीफों को धमकी देने तथा असामाजिक तत्वों से मेल-जोल रखने वाली पुलिस व्यवस्था, कर चोरी को सम्भव, ईमानदार को परेशान, सरकारी खजाने को घाटा व काली कमाई में वृद्धि करने वाली कर व्यवस्था तथा उत्पादन को हतोत्साहित, नकली माल को प्रोत्साहित व पल-पल पर बाधाएँ पैदा करने वाली लाइसेंस व्यवस्था को कायम रखने के लिए देश बचाए रखना चाहते हैं ?

देश बचाने का नारा लगाने वालों से कोई यह पूछे कि यह क्या किया जा रहा है ? *बल्कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इसके भौगोलिक क्षेत्रफल में भी* कमी आती जा रही है और स्वार्थी राजनीतिबाज बिना किसी शर्म व झिझक के अपनी सत्ता बचाने के लिए देश बचाने का आह्वान करते रहते हैं। वर्ष 1960 तक संयुक्त राष्ट्र संघ ने ही भारत के क्षेत्रफल को 32 लाख से 32 लाख 60 हजार वर्ग किलोमीटर के बीच पाँच बार परिवर्तित किया व वर्ष 1961 में

तो उसने जम्मू कश्मीर को भारत के एटलस से ही हटा दिया। पाकिस्तान ने वर्ष 1947 में ही 32 हजार 500 वर्ग मील जमीन भारत से झपट ली व दो हजार वर्ग मील का इलाका चीन को दे दिया। चीनी दबाव के आगे हमने तिब्बत पर अपना अधिकार छोड़ा व बंग्लादेश को जमीन भेट की। चीन हमारे हजारो वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर नाजायज कब्जा किए हुए है व 1965 के युद्ध के बाद कच्छ की 320 वर्ग मील जमीन युद्ध मे विजय के बाद पाकिस्तान को भेट की गई। सत्ता मे रहने वाले व देश बचाओ का राग अलापने वाले राजनीतिबाजो ने भारतीय भू-भाग को इस प्रकार बाँटा है जैसे वह उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हो। यह तथ्य किसी से छिपा हुआ नही है कि गुप्त रूप से चीन व पाकिस्तान के साथ यथास्थिति के समझौते करने की योजनाएँ बन रही है। देश को बचाने का दावा करने वालो का कोई भरोसा नही कि वे कब अमेरिकी दबाव मे आकर भारत माता की अस्मिता का ही सौदा कर लें। क्योंकि वे किसी के भी कितने ही दबाव के अनुसार देश के अस्तित्व को तो दाँव पर लगा सकते है, लेकिन सत्ता सुख नही छोड सकते हैं। ऐसे व्यक्तियो को देश बचाने का आह्वान करने का क्या नैतिक अधिकार है ? इस प्रश्न का कोई सार्थक मतलब तब ही निकल सकता है जब इसे हजारो-लाखों व्यक्तियों द्वारा एक साथ व प्रभावपूर्ण तरीके से पूछा जाए।

पूछा तो यह भी जाना चाहिए कि देश को क्या इसीलिए बचाए रखना है, जिससे तीस करोड व्यक्तियो के पीडादायक गरीबी व पचास करोड़ के छत रहित आवास के हालत में जिन्दा रहने वालो के होते हुए भी राष्ट्रपति 335 कमरों, 3 किलोमीटर लम्बे बरामदो, 13 एकड़ मे फैले अति सुन्दर बाग-बगीचो वाले मकान में रह सके व उसके रखरखाव पर प्रति वर्ष अरबों रुपए खर्च किए जा सके। हत्या, लूट, बलात्कार, तस्करी, देशद्रोह व अनेकों वित्तीय अनियमितताओ के आरोपी मंत्रियो, सासदो व विधायकों की सुरक्षा पर गरीब देश की जनता का अरबों रुपयो का खर्च किया जा सके ? शायद देश बचाने वाले चाहते हैं कि केवल एक बार मनोनयन या तथाकथित चुनाव से जनप्रतिनिधि बन जाने पर उन्हे सरकारी मकान, निशुल्क पानी व बिजली, यात्रा सुविधा, पेशन व अनेको अनगिनत लाभ मिलते रह सकें। सरकारी खर्चे

अपनी ही बहनो व माताओ को सरेआम वेश्यावृत्ति के लिए परोसने वाली जनजातियो के लिए ऐसे आह्वानकर्ता बिल्कुल भी चिंतित क्यो नही हैं ? उनका मन कागज बीनने वाले करोडो मानवो, भूखे पेट सोने वालो, मल त्याग के लिए खुले स्थानों का उपयोग करने वाली लक्ष्मियों को देख कर विचलित क्यो नहीं होता है ?

निष्कर्ष बिल्कुल सीधा व स्पष्ट है कि जो देश को बचाने की जितनी बाते करते है, देशवासियो की भलाई उनसे बचे रहने मे ही है, क्योकि ऐसे कहना उनकी आत्मा की नही बल्कि पाखण्ड, स्वार्थ व सत्तालोलुपता की आवाज है। वे देश के नाम पर अपनी सत्ता, सुख सुविधाओं व प्रभाव को ही बचाए रखना चाहते हैं। देशवासियो से उनका सरोकार नहीं के बराबर ही है।

□□□

18

पश्चिम का मानवाधिकार सरोकार : हमें क्यों हो स्वीकार

पाकिस्तान के कुछ मदरसों में छोटे बच्चों के साथ किए जा रहे अमानवीय व्यवहार की चर्चा पश्चिमी समाचार माध्यमों में कई दिनों से शीर्ष स्थान बनाए हुए है। बीबीसी व वाइस ऑफ अमेरिका प्रसारण माध्यमों व वाशिंगटन पोस्ट व गार्जियन जैसे समाचार पत्रों में रोज इस सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रसारित व प्रकाशित हो रही है। समय-समय पर ऐसा ही भारत में गलीचा, पटाखा, माचिस व जवाहरात उद्योग में लगे व चाय, पान, सड़क छाप ढाबों पर काम करने वाले बालकों के सम्बन्ध में छपता रहता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में करोड़ों बच्चे दयनीय परिस्थितियों में जी रहे हैं, लेकिन असत्य यह भी नहीं है कि अमेरिका सहित पश्चिमी राष्ट्रों में भी असंख्य बालक-बालिकाएँ घोर अमानवीय परिस्थितियों में रह रहे हैं। यह अलग बात है कि ऐसी खबरें पश्चिमी राष्ट्रों के समाचार माध्यमों पर प्रभावी नियंत्रण व हमारी हीन मानसिकता के कारण कभी व्यापक रूप नहीं ले पाती हैं। पता नहीं हम अमेरिका के इतने दबाव में क्यों हैं कि उसके हर दावे, प्रतिवाद व उलाहने को उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं ? उसकी दोगली व दुराग्रहपूर्ण हरकतों को उजागर करने के लिए यह एक ही तथ्य पर्याप्त होना चाहिए कि उसके द्वारा मानवाधिकारों के नाम पर सबकी नाक में नकेल डालने के प्रयत्नों के बावजूद वर्ष 1979 में 130 राष्ट्रों द्वारा महिला अधिकारों के लिए सम्पन्न समझौते पर उसने अभी तक हस्ताक्षर नहीं किए हैं, जबकि केवल विकासशील राष्ट्रों में महिला अधिकारों के हनन का सर्वाधिक मुखर

विरोध उसी के द्वारा किया जा रहा है।

समय रहते इस बात को समझ लेना अति आवश्यक है कि अमेरिका के हर कहने व करने का सीधा अर्थ अपने दबदबे को बनाए रखने का है, जिससे उसके व्यापारिक हितो का सरक्षण होता रह सके। इसके लिए उसकी नीति भारत जैसे उभरते जा रहे विकासशील राष्ट्रो को इसी बहाने बदनाम, परेशान व नकारात्मक रूप से प्रभावित करते रहने की है। उसकी इस नीति का प्रतिकार अपनी ओर से दिए जाने वाले स्पष्टीकरणो से नहीं बल्कि "आक्रमण सबसे बडी सुरक्षा' के सिद्धान्त का पालन करने से ही सम्भव है। पता नहीं हम यह क्यो मान कर चलते है कि मानवाधिकार क्या है का निर्धारण केवल अमेरिका या पश्चिमी राष्ट्रो द्वारा ही किया जा सकता है। वास्तविकता तो यह है कि मानवाधिकार हनन का निर्धारण निरपेक्ष रूप मे नही बल्कि देश, काल व परिस्थिति की सापेक्षता के आधार पर ही किया जा सकता है। भारतीय सस्कारो के आधार पर तो विवाह सामाजिक बधन पर स्त्रीगमन महापाप व सतान की देखभाल नैतिक दायित्व है। इन मर्यादाओ को नही मानना मानवाधिकार तो क्या अदृश्य शक्ति की सत्ता को चुनोती देने जैसा है और यह सब कुछ पश्चिमी देशो मे सर्वाधिक हो रहा है। अकेले अमेरिका मे प्रति वर्ष हजारो बच्चे माँ-बाप की पिटाई से मौत के मुँह मे चले जाते है, लाखो स्त्रियाँ पतियो की पिटाई से मानसिक रूप से विकृत हो जाती है व हजारों के गर्भ गिर जाते है। वहाँ कार्यशील महिलाओ का शारीरिक, मानसिक व आर्थिक शोषण शायद सर्वाधिक होता है। ऐसी अधिसख्यक महिलाओं को सम्भ्रांतता का आवरण ओढे हुए वेश्याओ का सा जीवन जीना होता है, समान कार्य के लिए कम वेतन व सुविधाओ को मजबूर होना होता है। यह तथ्य अविश्वसनीय होते हुए भी सत्य है कि अमेरिका मे स्त्री के यौन शोषण से मुक्ति के सबसे प्रभावी उपाय-विवाह की न्यूनतम आयु सीमा व पंजीयन का कोई नियम नही है व फ्रास मे पति की स्वीकृति के बिना पत्नी बैक मे अपना खाता नहीं खोल सकती है। इसी का परिणाम है कि अकेले अमेरिका मे अति कम आयु की एक करोड से भी अधिक बालिकाएँ गर्भवती है, जिनके कष्टो के सामने भारतीय बाल श्रमिको के कष्ट तो कुछ भी नही है, क्योकि इनमे से अधिकांश तो वे

वालिकाएं हैं, जिनके माता-पिता ने अपने स्वार्थों के कारण उन्हे त्याग दिया है। यह घोर अमानवतावादी कृत्य नहीं तो क्या है ? जो पश्चिमी समाज भारत में वेश्याओं की अमानवीय परिस्थितियों को चटकारे लेकर प्रचारित करता है उसके हालात क्या हैं ? वैसे तो पूरा पश्चिमी समाज ही रंडीखाना है, लेकिन अबोध बालिकाओं के साथ उनके पिता, भाई व रिश्तेदार जैसी यौन क्रियाएं करते हैं, उसके लिए सजाए मौत भी अति न्यून दण्ड माना जाएगा, लेकिन निष्ठुर अमेरिकी प्रशासन तो इसे अन्यथा लेता ही नहीं है।

मानव को मानवीय परिस्थितियों में जिन्दा रखने का मूल अधिकार है तो सम्बन्धित सरकार का ऐसी परिस्थितियाँ उपलब्ध करवाना कर्त्तव्य है, लेकिन अधिकांश पश्चिमी सरकारें इस दृष्टि से तो मानवाधिकारों क्या मानव का ही उपहास उडा रही हैं। यहाँ शराब, हेरोइन, सैक्स, जुआ, बाल अपराध, पारिवारिक टूटन, *विवाह संस्था की अवहेलना, हिंसा व अन्य अपराधों* के कारण जीवन असहनीय ही नहीं बल्कि नारकीय बना हुआ है। मानसिक रोगियों, उपेक्षित वृद्धों, छिटकाए हुए बच्चों, तलाकशुदा महिलाओं, अविवाहित जोड़ों, अवयस्क वेश्याओं, अपराधी गिरोहों की बढ़ती संख्या ने आम नागरिक को आतंकित, असहाय व दुखी कर रखा है। हिंसा, बलात्कार, आतंक, जोरजबरदस्ती ने परिस्थितियों को नारकीय बना रखा है। मुद्दा यही है कि इस सबको मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन मानते हुए अमेरिका के साथ पश्चिमी राष्ट्रों को कठघरे में *खड़ा क्यों नहीं किया जाए।*

कैसी विडम्बना है, जिस देश ने इराक, हैथी, क्यूबा, सोमालिया जैसे राष्ट्रों के करोड़ों नागरिकों को केवल अपने हितों के लिए आर्थिक प्रतिबंधों के द्वारा नरक भोगने के लिए मजबूर कर रखा है, उसे कोई भी खुलेआम मानवाधिकारों का भक्षक नहीं कह रहा है। अगर कोई अपराध किया भी है तो इन राष्ट्रों के शासकों ने तो, फिर सजा वहाँ के नागरिकों को क्यों ? यह तो सरासर मानवता के विरुद्ध अपराध है, अमेरिका को भारत में आतंक के पर्याय बन चुके व्यक्तियों के विरुद्ध *सरकारी कार्रवाई* तक में मानवाधिकारों का उल्लंघन नजर आता है, उसका दिल पता नहीं क्यों दवा की कमी के कारण बिलख-बिलख कर मरते बच्चों व वृद्धों को देखकर भी पत्थर का हुआ रहता

है। सोमालिया, इथोपिया, हैथी, वियतनाम जैसे देशो में लाखो-करोड़ों नागरिक आज भी अपग, विकृत व बीमार होकर अमेरिका को कोस रहे है, इसने अपनी मूछ ऊची रखने के चक्कर मे रासायनिक हथियारो, गोला-बारूद व हथियारो का असहाय व निर्दोष नागरिको के विरुद्ध निर्दयतापूर्वक उपयोग किया है। यह वही अमेरिका है जिसने लाखों मानवो को परमाणु बम से मारने व अन्य करोडो को शारीरिक व मानसिक रूप से अयोग्य बनाने तथा पेरू, उत्तरी वियतनाम को बजर भूमि मे परिवर्तित कर देने में किसी भी मानवीय मूल्यों, अन्तरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया या कानून की चिन्ता नही की। अपने ही कानून का सीधा उल्लघन कर आज वह क्यूबाई शरणार्थियों को अपने यहां आने से रोक कर उन्हे उस देश मे रहने को मजबूर कर रहा है, जिसे राष्ट्रपति क्लिंटन 'कारावास' की सज्ञा देते रहे है। यह कदम घोर अमानवतावादी कैसे नही है ? जब इतना कुछ करना मानवाधिकारो का उल्लघन नही है तो जो बच्चे स्वेच्छापूर्वक अपना पेट भरने को केवल काम करते है, उसे मानवाधिकारों का उल्लघन क्यो माना जाना चाहिए।

हमे पश्चिमी राष्ट्रो को यह बताना चाहिए कि जिस देश की तीस प्रतिशत जनसख्या घोर गरीबी का जीवन जी रही हो, पाँच करोड़ के पास कोई काम नही हो, दस करोड गदी बस्तियों मे रह रहे हो, 45 करोड निरक्षर हो, वहाँ पश्चिमी मापदण्डो के अनुरूप जीवनयापन, काम की परिस्थितियों, स्वास्थ्य सेवाओ व पर्यावरण शुद्धता की आशा कैसे की जा सकती है। जहाँ आधे समय भूखे रहने, दुर्गधपूर्ण व सीलनभरी जगहो मे निवास करने व पोशाक के नाम पर केवल तन को ढँके भर रहने की मजबूरी हो, वहाँ बच्चो को काम से वचित करना उन्हे जानबूझ कर मरने को बाध्य करने के समान ही है। जब तक कि कोई सार्थक वैकल्पिक व्यवस्था नही की जाए। जो कि हर मामले में होना पूरी तरह असम्भव है। यह सही है कि बीडी, जवाहरात, भवन निर्माण जैसे उद्योगो मे बाल श्रमिको को उनकी क्षमता से ज्यादा काम करवाया जाता है, लेकिन इसका मतलब यह नही है कि उनके द्वारा उत्पादित माल का बहिष्कार ही कर दिया जाए ! यह तो बीमारी को दूर करने के स्थान पर बीमार को मारने जैसा हुआ। तो फिर जो पश्चिमी उत्पादक विकासशील देशो मे निषेध दवाइयो,

खाद्य वस्तुओं, रासायनिक व अन्य महाघातक हथियारों आदि का निर्यात करते है, उन्हें क्या सजा दी जानी चाहिए ?

अजीब विडम्बना है, जो देशद्रोही, पथभ्रष्ट, असामाजिक व आदतन अपराधी तत्व बिना वजह आम नागरिकों को गाज़ मार रहे है, वहाँ पश्चिमी राष्ट्रों को मानवाधिकार हनन नजर नहीं आता है, लेकिन बचाव में की गई सैनिक या पुलिस कार्यवाई में इसके अलावा कुछ दिखना ही नहीं है, तो क्या हम तथाकथित मानवाधिकारों की रक्षा के लिए देश का विखण्डन, आन्तरिक अशांति, निर्दोष लोगों का कत्लेआम व अर्थव्यवस्था की बर्बादी होने दें ? अमेरिका और उसके साथी देश तो यही चाहते है कि हमें विनाश के रास्ते में किसी भी तरह भटकाया जाए, लेकिन अंतिम निर्णय तो हमें ही लेना है कि हम उसके दबाव में सब कुछ स्वीकार करते चलें या उसकी कमियों को उजागर कर उसे रक्षात्मक होने को मजबूर करें। श्रेष्ठ विकल्प तो दूसरा ही है। जरूरत केवल दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति जुटाने, समान परिस्थितियों वाले देशों को संगठित करने व नियोजित रूप में आक्रमण करने की है।

□□□

19

साम्प्रदायिकता का बढता उन्माद : आखिर रुके कैसे ?

प्रजातान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में ध्रुवीकरण एक सतत एव स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसे राजनैतिक विकास के लिए एक सीमा तक आवश्यक भी माना जाता है। यदि उसका आधार सिद्धान्त, चिन्तन व नीतियाँ हो, लेकिन वर्तमान मे भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व मे घोर पुरातन पंथी, धर्मान्ध व सत्ता लोलुप ताकतो द्वारा छद्‌म धर्मनिरपेक्षता की अस्वीकृति, सस्कृति की रक्षा, तुष्टिकरण नीतियो के विरोध, रामराज्य की स्थापना, राम मंदिर के निर्माण, राष्ट्रीय अखण्डता व स्वावलम्बन पर आधारित अर्थव्यवस्था की प्राप्ति के लक्ष्य के नाम पर ऐसा कुछ किए जाने की जो कुचेष्टाएँ की जा रही है क्या उन्हे प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की अनिवार्य बुराई मान कर सहन करते रहा जाए ? ऐसी चेष्टाएँ निश्चय ही श्रेष्ठ लक्ष्य श्रेष्ठ साधन के सिद्धान्त के अनुरूप तो नही है। इतना ही नही ऐसी चेष्टाओ की सफलता की तो बहुत दूर की बात है इनका विचार ही राष्ट्रीय अखण्डता, धर्म निरपेक्षता व सामाजिक सहिष्णुता के लिए भारी खतरा बन गया है। तो क्या इन खतरो से बचाव के लिए धार्मिक आधारो पर राजनैतिक दलो के गठन, चुनाव प्रचार, शिक्षण संस्थाओ की स्थापना जैसे कार्यो पर कानून बना कर रोक लगाना सार्थक उपाय हो सकता है ? ऐसे उपायो से कुछ समय के लिए ऐसी हरकतो पर आशिक नियन्त्रण, एक दल विशेष के हितो की पूर्ति व राजनैतिक लाभ प्राप्ति की आकांक्षाओ की पूर्ति भले ही हो जाए, लेकिन समस्या के दीर्घकालीन हल की आशा नही की जा सकती है और फिर किन्ही व्यक्तियो, समूहो व दलों की गतिविधियों को

प्रतिबंधित करना लोकतांत्रिक सिद्धान्तों तथा आधारों पर ही आघात करने के समान है। निकृष्ट साधनों से श्रेष्ठ उद्देश्य की पूर्ति आखिर कैसे की जा सकती है? वैसे भी राजनैतिक दृष्टि से ऐसा करना ऐसे तत्वों को शहीद या कुख्यात बना कर इनका रास्ता साफ व सरल बनाना ही है। इतिहास से तो इसी तथ्य की पुष्टि होती है। तो क्या इन तत्वों को स्वच्छंद छोड़ कर यहाँ विनाश को आने दिया जाए? कम से कम राजनैतिक दलों के लिए तो ऐसा सोचना भी पाप है। जिनका काम ही बात-बात पर आम जनता को राष्ट्रभक्ति, त्याग, बलिदान, समर्पण के लिए आह्वान करने का है। बस रास्ता केवल एक ही है कि सभी धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक व सच्ची राष्ट्रवादी ताकतें मिलकर ऐसे तत्वों का संगठित, समन्वित व दृढ़तापूर्वक राजनैतिक आधारों पर मुकाबला करें। इसके लिए इन तत्वों की कथनी व करनी के भेद को उजागर करने, छद्म चरित्र का पर्दाफाश करने, धर्म के नाम पर की जा रही आडम्बरता की खिल्ली उडाने, राष्ट्रीय अखण्डता की आड में रचे जा रहे विखण्डताकारी षड्यंत्रों को बेनकाब करने, रामराज्य के थोथे नारे की बखिया उधेड़ने, धार्मिक, चंदे के व्यापार से अरबपति बन बैठे बगुलाभक्तों की कुटिलताओं को चौपट करने व लोकतंत्र के नाम पर फाजिज्म के बढाए जा रहे प्रभाव को हर सम्भव रोकने की आवश्यकता है।

आम जनता जिसे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं, संकीर्ण स्वार्थों व कुण्ठाओं की संतुष्टि के लिए धर्म के नाम पर धर्माडम्बर की अफीम खिला कर भ्रमित, उद्वेलित व पथभ्रष्ट करने की कुचेष्टाएं की जा रही हैं, को सीधे तौर पर यह बताने की जरूरत है कि इन तत्वों ने विगत में गाय की रक्षा, गंगा जल की फेरी, राम शिलाओं की पूजा, मंदिर निर्माण के लिए भेंट, कारसेवकों की भर्ती, बलिदानी जत्थों के गठन, चरण पादुकाओं के पूजन, राम मंदिर के निर्माण, रामराज्य की स्थापना, अर्थव्यवस्था के स्वदेशीकरण जैसे पता नहीं कितने आह्वान किए व कार्यक्रम दिए हैं, लेकिन उनमें से किसी में भी उनका विश्वास, भक्ति या श्रद्धा नहीं है। सब कुछ केवल राजनीति में कुछ पा जाने के लिए किया जा रहा है। इसके लिए ये राष्ट्र, धर्म, संत, संस्कार, शांति, विकास, सौहार्द्र, व्यवस्था आदि किसी की भी बल्कि सभी की बलि चढ़ाने को तैयार

ही नही है, बल्कि आमादा है। उन्हे किसी भी सुधार, विकास या सकारात्मक कृत्य से कोई लेना-देना नही है, साथ ही उन्हे किसी भी ढोंग, दिखावा या षड्यत्र करने से परहेज या पछतावा भी नहीं है।

यह तथ्य किसी से छिपा हुआ नही है कि गाय जिसे माता कह कर लोगो की भावनाएँ भडकाने के प्रयत्न यदा-कदा होते रहते है की सर्वाधिक दुर्दशा भारत मे ही हो रही है। इतना ही नहीं इसकी पूजा का नारा देने वाले ही इसको दुत्कारने मे सबसे आगे है। किसी भी शहर या गाँव में अनगिनत मरियल ही नहीं बल्कि मरणासन्न गाये यहाँ-वहाँ कूडा-कचरा बल्कि उससे भी अधिक निकृष्ट वस्तुएँ खाती हुई आसानी से देखी जा सकती है। इतना ही नहीं, गाय की रक्षा व गोवध निषेध के लिए कानून बनाने के लिए आंदोलन करने व इसी मुद्दे के आधार पर वोटो की फसल काटने के आकाक्षी लोगों के घरो पर बिना दूध देने वाली, बॉझ या आवारा गाय व बूढ़े बैल को बँधा हुआ शायद ही किसी ने देखा हो। बैल को वेदनापूर्ण तरीके से जोतने, बाँझ गाय से हल खिचवाने, इन्हे कत्लगृहो मे भेजने, इनकी हड्डियो का लाभपूर्ण व्यापार करने से गाय भक्तो ने अपने को पूरी तरह से अलग तो नही कर रखा है। कैसी हास्यास्पद व निन्दा योग्य हकीकत है कि जो व्यक्ति, दल या सरकार गोहत्या निषेध के लिए मृत्युदण्ड जैसे कानून का सहारा लिए जाने को आमादा हैं वे ही बाकी जानवरो को लाखो की सख्या मे कत्ल करवाने के लिए आधुनिकतम वधगृह खुलवाने के लिए जी-जान से लगे हुए है। जानवर-जानवर मे ऐसा अमानवीय भेद करना पता नही किस धर्मशास्त्र मे लिखा है ?

अयोध्या मे किसी ढांचे को गिरा कर गर्भगृह पर ही मंदिर बनाने के लिए हठ कर रहे लोग सर्वधर्म समभाव की हमारी सस्कृति, अनेकता मे एकता की राष्ट्रीय विशेषता, राष्ट्रीय हितो व स्वय मर्यादा पुरुषोत्तम कहे जाने वाले राम की छवि के विरुद्ध ही हरकते नही कर रहे है, बल्कि देश के संविधान, कानून, न्याय पालिका व जनभावनाओ की भी खुलेआम धज्जियाँ उडा रहे है। वादा खिलाफी इनके लिए शर्म की नहीं बल्कि गर्व की बात है, जो लोग राम को सर्वव्यापी मानते है वे ही उसके एक मदिर के लिए दूसरे मदिरो को सगर्व ध्वस्त कर रहे है। एक मदिर के लिए राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदाकि सौहार्द,

धार्मिक सहिष्णुता, आर्थिक विकास, कानून एव व्यवस्था एव राजनैतिक व्यवस्था को दाँव पर लगाने वाले धर्म व संस्कृति के ठेकेदारों को उन हजारों भगवान निवासों (मंदिरों) की अश मात्र भी चिन्ता नही है, जहाँ की मूर्तियाँ का सौदा चाँदी के टुकडों से किया जा रहा है। भगवान के रहने की जगह को छोटी कर व्यापारिक परिसर बनाए जा रहे है। भक्तगणों द्वारा 'भगवान' को चुलाया व दैनिक अर्चना के लिए तरमाया जा रहा है तथा पुजारियो को भूखे मरने पर मजबूर किया जा रहा है, जबकि विश्व हिन्दू परिषद द्वारा प्रतिवर्ष करोडों रुपए देश एवं विदेश से मंदिर निर्माण, मंदिरो के जीर्णोद्धार व अन्य निर्माण तथा नियमित पूजा-अर्चना करवाने के नाम पर एकत्रित किए जा रहे हैं। इतने धन का धार्मिक कार्यों में लगी ऐसी सस्थाएँ कितना काला या श्वेत कार्यो में उपयोग करती हैं, इसका पता तो तब चले जब आय-व्यय का कानूनी अंकेक्षण नियमित व आवश्यक रूप से हो।

वैसे भी राम सहित धर्म के प्राय: प्रत्येक प्रतीक व माध्यम को धन कमाने का जरिया बनाकर गरीबों का शोषण व धनिकों का पोषण किया जा रहा है। इन प्रतीकों के स्टीकर, बैनर, बिंदियाँ, ध्वज, वस्त्र, अंगूठियाँ राम की दुहाई देकर बडे मुनाफे पर बेचे जा रहे हैं। ऐसे ही धर्म यात्राओं, दृश्य-श्रव्य कैसेटो, भजन-कीर्तन के आयोजनों में पैसा बनाया जा रहा है। इन सबका आर्थिक लाभ स्वाभाविक रूप से धनिकों को ही मिल रहा है। बेचारा गरीब तो चन्दे, चढावे व खरीद के चक्कर में पिसता ही जा रहा है। वर्तमान में राष्ट्रीयता की बढ-चढ कर बातें करने वाले बीजेपी के पुराने संस्करण जनसघ व रामराज्य परिषद तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पुरखो का क्या इतिहास रहा है? स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व वे अंग्रेजों के चहेते रहे व स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका नगण्य ही नहीं बल्कि नकारात्मक रही है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जिसे बापू कहने में इस जमात को शर्म आती है की हत्या किसी स्वयसेवक द्वारा ही की गई थी, जबकि बापू के मरते समय निकले 'हे राम' शब्दो का राजनैतिक लाभ प्राप्ति के प्रयत्न करने में इन्हें जरा भी झिझक नहीं आती है। गुमान मल लोढा व सिकन्दर बख्त जैसे नेता तो मूर्ति पूजा का विरोध करने वाली जमात के हैं व अडवानी झूलेलाल के उपासक हैं तथा प्रोफेसर जोशी

20

भ्रष्टाचार का फैलाव : हल क्या ?

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में सर्वाधिक विकास का क्षेत्र शायद भ्रष्टाचार ही रहा है। भ्रष्ट राजनेताओं, मंत्रियों, प्रधानमंत्रियों, वरिष्ठ प्रशासनिक, बैंक तथा वित्तीय संस्थाओं के अधिकारियों व ठेकेदारों की भ्रष्टाचार व ऐसे मामलों में ज्योमितिक दर से हो रही वृद्धि तो ऐसा ही आभास देती है। जन सामान्य की मानसिकता, भ्रष्टाचार को अनैतिक नहीं बल्कि जीवन जीने का अनिवार्य कृत्य मानने की होती जा रही है। भ्रष्ट आचरण का आरोपित व्यक्ति समाज में अपने आपको अपमानित, हीन, असहाय या अलग-थलग महसूस नहीं करता है। उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार, घूसखोरी या वित्तीय अनियमितताओं के आरोप लगाए जाने पर न तो सम्बन्धित व्यक्ति विचलित व हतोत्साहित होता है और न ही जनता उद्वेलित व आंदोलित होती है। इस स्थिति के लिए नैतिक स्तर की गिरावट, भौतिकवाद का प्रसार व शीघ्र सफलता प्राप्ति की बढती आकांक्षा जैसे कई कारण हो सकते हैं, लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है भ्रष्टाचार के छोटे या बडे कांड में आरोपित व्यक्ति का अपवाद स्वरूप ही दोषी ठहराया जाना। इस निष्कर्ष की पुष्टि के लिए बड़ी सादड़ी, चुरहट, बोफोर्स, प्रतिभूति घोटाला, गोल्ड स्टार जैसे अनगिनत मामले गिनाए जा सकते हैं, जिनसे राजनैतिक भूचाल आया, उच्च स्तरीय जाँच के आदेश दिए गए। देशी व विदेशी विशेषज्ञों की जाँच समितियाँ बनाई गई, संसदीय जाँच दलों का गठन किया गया, पक्ष-विपक्ष पर आरोप पत्र दाखिल किए गए, उच्च अधिकार प्राप्त आयोगों की स्थापना हुई व न्यायालयों ने अपने फैसलों में दोषी ठहराया, लेकिन किसी भी व्यक्ति को

कारावास की सजा मिलना तो दूर आर्थिक दण्ट तक नहीं भुगतना पडा। न्यायालय के फैसले के अनुसार व्यवहार करना व नैतिकता के आधार पर पद से त्यागपत्र देना बीते समय की बाते हो गई है। राजनीतिज्ञों के लिए सबसे बडा धर्म सत्ता मे बने रहने का है।

यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्राय शत-प्रतिशत जन प्रतिनिधि चुनावो मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से फरजी मतदान करवाने, सीमा से अधिक व्यय करने, सरकारी साधनो का दुरुपयोग करने, चुनाव अधिकारियो से साँठगाँठ करने जसे भ्रष्ट आचरण के दोषी होते है। उनकी ही मह व सहमति से हिंसा व मतदान पेटिया को उठाने की घटनाएँ होती है, लेकिन कितने ऐसे दोषी व्यक्ति सजा पाते है ? इन दिनो पुलिस अधिकारियो के थोक भाव मे जो तबादले हुए है उसके पीछे राजनेताओ की 'डिजाइर' महत्वपूर्ण कारण रहा है। प्रत्येक प्रभावशाली राजनीतिज्ञ हर कोशिश कर अपने निर्वाचन क्षेत्र मे अपनी पसद का प्रशासनिक, न्यायिक व पुलिस अधिकारी लगवाने की जी-तोड साँठगाँठ बैठाने मे लगा है। यही कारण है कि पुलिस अधीक्षक जैसे अधिकारी का एक ही दिन मे तबादला हो रहा है। प्रति वर्ष 31 अगस्त को राज्य सरकार द्वारा तबादलो पर रोक लगा दी जाती है, लेकिन इस बार इस तिथि के बाद होने वाले तबादलो ने रिकार्ड बनाया है। आखिर क्यो ? स्पष्ट है प्रत्येक सम्भावित प्रत्याशी मतदाताओ के समर्थन के अभाव मे भी अपनी जीत सुनिश्चित करना चाहता है। यह हर प्रकार से निकट भविष्य मे होने वाले भ्रष्टाचार की पूर्व तैयारी ही है।

लगता है हम सब भ्रष्टाचार के सम्बन्ध मे पूरी तरह से सवेदनहीन हो गए है। तब ही तो जिस व्यक्ति के विरुद्ध प्रतिभूति घोटालाकाण्ड मे पाँच हजार करोड रुपयो से भी अधिक की राशि के लिए दर्जनो मुकदमे चल रहे है, उसका दुस्साहस प्रधानमत्री को एक करोड रुपए देने का आरोप पत्रकार सम्मेलन बुला कर लगाने का हो रहा है। वह खुलेआम पूरी तरह से नियम विरुद्ध आचरण कर अपने वकील को लाखो रुपए की फीस और वकील आजादी के बाद मे भ्रष्टतम अपराधी को जमानत पर छुडवा रहा है, लेकिन जनता पूरी तरह शात है। इससे भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि प्रधानमत्री इस

आरोप से सीता माता की तरह पवित्र निकलने का दावा तो करते है, लेकिन कोई कानूनी कार्रवाई नहीं कर रहे है, जबकि इस आरोप ने नरसिंह राव के व्यक्तित्व, प्रधानमंत्री पद की गरिमा व सम्पूर्ण राष्ट्र की इज्जत को गम्भीर चोट पहुँचाई है। ऐसे में भ्रष्टाचार व भ्रष्टाचारियों पर नियंत्रण कैसे लग सकता है ? व्यक्ति ने पूरे देश की टोपी उछालने मे कोई कसर बाकी नहीं छोडी तथा जिस पर राजनैतिक अस्थिरता, साम्प्रदायिक उन्माद व देशद्रोही ताकतो से हाथ मिलाने के आरोप लगाए गए हों, उस पर आरोपित व्यक्ति द्वारा किसी प्रकार की कानूनी कार्रवाई नहीं करना दुखद एव हास्यास्पद ही नहीं बल्कि भ्रष्टाचार व अनियमितताओं को प्रोत्साहित करने के समान है। राव पर भ्रष्टाचार का खुलेआम आरोप लगाना केवल उनकी व्यक्तिगत इज्जत से जुडा हुआ प्रश्न नहीं माना जा सकता है। यहाँ मुद्दा प्रजातांत्रिक व्यवस्था, परम्पराओं व मान्यताओं का है। देश के प्रधानमंत्री पर लगाए भ्रष्टाचार के आरोप को जब तक धो नहीं दिया जाता है भ्रष्टाचारियों के बुलन्द होते होसलों पर रोक कैसे लगाई जा सकती है ?

भ्रष्टाचार के तेज गति से फैलने का एक महत्वपूर्ण कारण राजनैतिक स्तर पर किसी भी दल द्वारा इसके विरुद्ध कभी भी गम्भीरतापूर्वक व योजनाबद्ध तरीके से अभियान नहीं चलाने का रहा है। कटु यथार्थ तो यह लग रहा है कि भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को बचाने के लिए सभी दलों के राजनीतिबाज एक ही है। इस सम्बन्ध में सभी दल संगठित व लामबंद हो रहे हैं। चाहे अपना-अपना राजनैतिक धरातल मजबूत करने के लिए एक-दूसरे राजनैतिक दलों के राजनीतिज्ञों पर भ्रष्टाचार के कितने भी आरोप लगाए जाएँ। लगता है किसी के भी विरुद्ध कोई भी कार्रवाई नहीं होने देने के लिए सब दलों के नेता सहमत हैं। नहीं तो क्या कारण है कि प्रताप सिंह कैरो, मोहन लाल सुखाडिया, अन्तुले, शरद पवार, अर्जुन सिंह व ओम प्रकाश चौटाला जैसे भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों पर गम्भीर आरोप लगाए फिर भी उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सका है, साथ ही इन आरोपित राजनेताओं ने आरोप लगाने वालों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की है। आरोप तो भूतपूर्व प्रधानमंत्री के पुत्र व रिश्तेदारों पर भी लगाए गए हैं, लेकिन हर मामले में राजनैतिक लाभ प्राप्त करने के बाद

पता नहीं क्यो आश्चर्यजनक चुप्पी हो जाती है। कर्नाटक के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बगरप्पा जिन पर भ्रष्टाचार के कई आरोप है, स्वय प्रधानमंत्री को दो करोड रुपए दिए जाने का आरोप सार्वजनिक रूप से लगाते है। उनके विरुद्ध कांग्रेस दल के अध्यक्ष श्री राव जैसा सक्षम व्यक्ति अनुशासनहीनता की छोटी-मोटी कार्यवाही भी नही करे तो आम जनता को आशंकित होने मे कैसे व क्यो रोका जा सकता है ? जबकि इनके लिए किसी व्यक्ति को मुख्यमंत्री बनाना या हटाना तो मामूली बात है। ऐसे सर्वोच्च सत्ताधारी की भ्रष्टाचार के मामले मे इस प्रकार की चुप्पी व मजबूरी भ्रष्टाचारियो के हौसले बुलन्द ही करती है। प्रतिभूति घोटाले की जॉच के लिए बनी ससदीय जॉच समिति का कार्यकाल जिस प्रकार बार-बार बढाया गया, जॉच के दौरान उसके सदस्यो ने निष्पक्ष सोच के स्थान पर राजनतिक हितो को वरीयता दी, गवाही के लिए व्यक्तियो को बुलाने मे पक्षपात किया, उससे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में जॉंच समितियाँ भ्रष्ट व्यक्तियो के नामो व कारनामो को उजागर करने के लिए नही बल्कि सम्बन्धित मामले को अपनी मौत स्वय मरने के लिए स्थापित की जाती है।

प्रतिभूति घोटाला काण्ड मे बैको व वित्तीय सस्थाओ के आला अफसर जिस प्रकार गम्भीर रूप से लिप्त पाए गए है, यह तो केवल एक बानगी है। कटु यथार्थ तो यह है कि हर विभाग के आला अफसरो का यही हाल है। उन्होने अपने अल्प सेवा काल मे ही असामान्य रूप से अधिक धन-सम्पदा बनाई है, लेकिन उन्हे पूछने वाला कोई नही है क्योकि इनकी लामबदी बहुत सशक्त है। इसके लिए पिछली सरकार के कार्यकाल मे एक भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी को भ्रष्टाचार के आरोप पर राज्य सरकार द्वारा हटाए जाने पर राष्ट्रपति के सीधे हस्तक्षेप के बाद वापस बहाल किए जाने के मामले को उदाहरण के रूप मे गिनाया जा सकता है। यह लामबदी का ही कमाल है कि भ्रष्टाचार के लिए आरोपित अधिकारियो को दण्डित करने के स्थान पर सरकार द्वारा पदोन्नत व पुरस्कृत करना पडता है। इन उदाहरणो के रहते आम जनता मे भ्रष्टाचार के विरुद्ध नफरत व डर कैसे उत्पन्न किया जा सकता है। इस तथ्य को बार-बार प्रमाणित करने की आवश्यकता नही है कि देश मे इतने बडे पैमाने पर

हथियारों, विध्वसक सामग्री, बहुमूल्य धातुओं व आतकवादियो की तस्करी भ्रष्ट उच्च अधिकारियों की मिली-भगत से ही हो रही है। नहीं तो क्या कारण है कि पॉच हजार करोड रुपए का प्रतिभूति घोटाला हो जाए, हजारो प्रशिक्षित आतंकवादी व हजारों टन परिष्कृत विस्फोटक सामग्री देश मे आ जाए, सैकडो-हजारों जन प्रतिनिधि कुछ ही समय में मालामाल हो जाएँ और सरकार तक खबर नही पहुँचे।

निष्कर्ष यह है कि जब तक ऊँचे स्तर पर भ्रष्टाचार को रोकने, आरोपित को दंड देने व दंडित को बहिष्कृत व पद मुक्ति के लिए बाध्य नही किया जाएगा भ्रष्टाचार की इस अमर बेल को बढने से रोका नहीं जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि आम जनता व राजनैतिक दलो के कार्यकर्ता निर्भीक, निष्पक्ष व निर्लिप्त होकर राज शक्ति पर जनशक्ति का वास्तविक नियंत्रण स्थापित करने के लिए संगठित व समन्वित होकर आगे आएं।

□□□

21

भारत में कानून क्या तोडने के लिए बनते हैं ?

किसी भी समाज को व्यवस्थित बनाए रखने के लिए कानून के अस्तित्व को हर काल व शासन व्यवस्था मे हर सुधारक व विचारक द्वारा स्वीकार किया गया है। इस आधार पर क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस देश मे जितने अधिक कानून हे, वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक व वित्तीय परिस्थितियाँ उतनी ही अधिक व्यवस्थित हे ? क्योंकि प्रत्येक देश के कानून मे इस सिद्धान्त को आवश्यक रूप से स्वीकार किया जाता है कि "कानून की अनभिज्ञता, दण्ड से छुटकारे का आधार' नहीं हो सकता है। अर्थात कानून बनाते ही यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक नागरिक इसके अनुरूप व्यवहार कर रहा है या ऐसा नहीं होने पर उसे दण्ड का भागी बनना है। इसी बात को आधार बना कर स्वतत्रता प्राप्ति के बाद भारत मे केन्द्रीय व राज्य सरकारों के द्वारा अनगिनत कानून बनाए गए है। इस दृष्टि से तो भारत ने दुनिया मे शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया है। इस सदर्भ मे दुर्भाग्यपूर्ण विरोधाभास यह है कि हमारे यहाँ कानूनों की सख्या जैसे-जैसे बढती जा रही है अव्यवस्था, अराजकता, भ्रष्टाचार, उच्छृखलता व अनियमितता उससे भी तेज गति से बढती जा रही है। कानून को तोड़ना यहाँ सबसे आसान काम समझा जाता है। विदेशियों को भारत को एक सुविधाजनक देश माने जाने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है। यह व्यग्य अब यथार्थ समझा जाने लगा है कि यहाँ कानून बनता ही तोडने के लिए है। विचारणीय ही नही बल्कि चिन्ता करने लायक प्रश्न यही है कि क्या वास्तविकता ऐसी ही है ? रोजमर्रा की जिन्दगी में जो कुछ देखने को मिलता है उससे तो इसकी पुष्टि ही होती है।

फुटपाथों पर बढते जा रहे अतिक्रमण, अव्यवस्थित व जोखिमपूर्ण होता जा रहा यातायात, विस्तार लेती जा रही अनियोजित बस्तियाँ, आम होती जा रही बिजली, पानी, आयकर बिक्रीकर, सम्पत्ति कर, गृह कर आदि की चोरी, लाखों की संख्या में होने वाली अवयस्को की प्रति वर्ष की शादियाँ, बहु पत्नी प्रथा का बढता चलन, गिरती जा रही सार्वजनिक परीक्षाओं की गरिमा, संसद व विधानसभाओं में जन प्रतिनिधियों का निरंकुश होता जा रहा व्यवहार तो कानून तोडने की बढती प्रवृत्ति को ही इंगित करते है। इसके अलावा भी बिना पढ़ाई के आयोजित करवाई जाने वाली परीक्षाएँ, सरकारी व अर्द्ध सरकारी कार्यालयों मे कर्मचारियों की अनुपस्थिति, लाखो करोडो कर्मचारियों में पड़ी अप-डाउन की लत, सरकारी वाहनो का खुलेआम हो रहा दुरुपयोग, माप-तोल में हो रही अनियमितताएँ, रोडवेज की बसों में ऊपर-नीचे लदी सवारियाँ, बिना परमिट के चल रही हजारों लाखों, बसें, जीपें, टैम्पो व रिक्शा तथा घरों में जल रहे गैस के चूल्हे यही कहानी कह रहे है।

भारत में ऐसा कौनसा शहर है जहाँ अवैध वाहन न चलते हों, निर्धारित संख्या से अधिक सवारियाँ ढोने वाले तिपहिये व चौपहिये वाहन ट्रैफिक पुलिस की खिल्ली उडाते हुए नहीं दौड़ रहे हों। बाल श्रमिकों की मुक्ति के जितने कानून बनते जा रहे हैं, उनकी संख्या उतनी ही बढती व दशा बिगडती जा रही है, बँधुआ मजदूरों के उन्मूलन का कानून बना कर वाहवाही कितनी ही लूट ली गई हो, लेकिन उनकी संख्या घटी नहीं है। कई बडे शहरों व प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों पर भिक्षावृत्ति निरोधक कानून बना दिए जाने के बावजूद भिखारियों की संख्या बढी है। ऐतिहासिक स्थलों, वन्य प्राणियों, दुर्लभ पक्षियों आदि के संरक्षण के पिछले वर्षों में पता नहीं कितने कानून बन चुके हैं, लेकिन मूर्तियों की चोरियाँ व पशुओं के शिकार पहले की ही तरह आम बने हुए हैं।

समान कार्य केलिए समान वेतन, निर्धारित दर पर वेतन व मजदूरी के भुगतान, कार्य दिवसों की संख्या व घंटों के निर्धारण, स्वास्थ्य मापदण्डों की पूर्ति आदि के कानून बने हैं,लेकिन समाज के पढे-लिखे तबके अर्थात अध्यापकों व प्राध्यापकों तक को अण्डर-पेमेन्ट किया जाना नियम सा बन चुका है। चाय की दुकानों, होटलों, सड़क छाप ढाबों व घर पर काम करने

वाले नौकरो का शोषण सरेआम हो रहा है। न्यूनतम मजदूरी कानून का उल्लघन सरकारी विभागो तक मे किया जा रहा है । उपभोक्ता सरक्षण अधिनियम 1986 के अन्तर्गत जिला मचो मे मुकदमा दर्ज होने के 90 दिन मे फैसला होने का कानूनी प्रावधान है, लेकिन ऐसा पाँच प्रतिशत मामलो में भी नही होता है।

नियमो मे व्यवस्था होने पर भी आवासन मण्डल कॉलोनियो मे पार्क, अस्पताल, स्कूल जैसी अतिआवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करवाता है। विकास प्राधिकरण विकास शुल्क वसूल करके भी विकास पूर्ण करवाना तो दूर, प्रारम्भ तक नही करता है। नगर पालिकाएँ सीवरेज लाइनें बिछाये बिना सीवरेज टैक्स वसूल कर रही है और गृह कर लेकर भी सफाई, बिजली व पानी की समुचित व्यवस्था नही कर रही है । सरकारी अस्पतालों तक मे निर्धारित मापदण्डो व नियमो के अनुसार डॉक्टरो, नर्सों व मरीजो का अनुपात नहीं है। प्रकाश, हवा व सफाई की व्यवस्था नही है। हमारे देश मे कानून व नियमो की धज्जियाँ किस सीमा तक उडती है, इसके लिए ससद व विधानसभाओ की कार्यवाहियो को देख व सुन कर आसानी से जाना जा सकता है। वहाँ संसदीय नियमों व परम्पराओ का जितना व जिस प्रकार से उल्लंघन कानून निर्माताओं द्वारा ही किया जाता है, उसे देख कर किसी भी स्वाभिमानी नागरिक का सिर शर्म से झुके बिना नही रह सकता है।

भारतीय नागरिको की यहाँ-वहाँ पेशाब करने की आदत के चर्चे तो पूरे विश्व मे है। घर के बाहर रास्ता रोक कर विवाह, पार्टी व उत्सव के लिए टैट लगा लेना तो हम हमारा अधिकार मानते है। लाखो लोग तो ऐसे है जो बिजली के तारो मे काँटा डाल कर बिजली लेना व जलापूर्ति पाइप को तोड कर पानी लेना व देना भी मूल अधिकारो मे ही शामिल करते है। कच्ची बस्ती मे रहने वालो के लिए तो किसी कानून का पालन करना आवश्यक माना ही नही जाता है। प्रतिदिन रेलवे से लाखो लोग बिना टिकट यात्रा कर करोडों रुपए का चूना सरकार के लगा ही रहे है। प्लेटफार्म टिकट लेने का जैसे चलन ही नहीं है। ऐसे अभिभावक तो अपवादस्वरूप ही मिलेगे जो निर्धारित आयु सीमा पार करते ही अपने बच्चो की पूरी टिकट लेना आरम्भ कर देते है।

नियम यह है कि एक शिक्षक अनुमति लेकर ही अधिकतम दो विद्यार्थियों को ट्यूशन पढ़ा सकता है, लेकिन बिना अनुमति के ही पाँच-दस के समूह में पढाने वाले ट्यूशनबाज हर छोटे-बड़े शहर व कस्बे में बडी संख्या में आसानी से मिल जाएंगे। ऐसी ही स्थिति डॉक्टरों की है। ड्यूटी के बाद वे कितनी प्रेक्टिस करते हैं, इसकी यदि एक बार के लिए चर्चा नहीं भी की जाए तो उसके दौरान ही गाँवों व कस्बों के डॉक्टर प्राइवेट विजिट पर जाते है उनका क्या किया जाए। यह सर्वविदित तथ्य है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत डॉक्टर, अध्यापक व अन्य कर्मचारी ड्यूटी रजिस्टर में पाँच-छह दिन के हस्ताक्षर एक साथ ही करते है। हैड-क्वार्टर लीव के लिए आवेदन अपवाद स्वरूप ही किया जाता है। नियमानुसार आकस्मिक अवकाश के लिए भी समय पूर्व ही आवेदन करना होता है, लेकिन ऐसा करना कर्मचारियों की आदत में ही नहीं है।

मैट्रिक माप-तोल प्रणाली को लागू हुए तीन दशक से भी अधिक समय हो गया है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में गज व सेर का अस्तित्व उसी प्रकार बना हुआ है। इतना ही क्यों प्रमाणित बाटों के स्थान पर पत्थर के बाट राजधानी तक में बेरोक-टोक धडल्ले से चल रहे हैं। एक व दो पैसे के सिक्कों को वैधानिक रूप से चलन से बाहर नहीं किए जाने पर भी उन्हें कोई भी स्वीकार नही कर रहा है। एक, दो, पाँच व दस रुपए के नोटों को तो बैंक वाले आम तौर पर जमा करने से मना कर देते हैं, जबकि ऐसा करना कानूनी अपराध है। ऐसी ही स्थिति बैंक खाता खोलने के सम्बन्ध में है। कार्यभार बढने के डर से बैंककर्मी आम नागरिक के अधिकार का स्पष्ट उल्लंघन कर खाता खोलने से मना कर देते हैं। किसी भी बैंक में ठीक दस बजे काम प्रारम्भ नहीं होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो पूरी तरह स्पष्ट हो ही जाता है कि कानूनों और नियमों का उल्लंघन जितना भारत में होता है उतना शायद अन्य किसी देश में नहीं। प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसा होता क्यों है ? यह प्रश्न चाहे गम्भीर लगे, लेकिन इसका उत्तर बहुत आसान है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण तो यह है कि हमारे यहाँ कानून बनाने में आवश्यक गम्भीरता व चिन्तन का नितान्त अभाव रहता है। यही कारण है कि अधिकांश कानून विधायिका में

बिना बहस के ही पारित हो जाते है। कानून बनाने से पूर्व ऐतिहासिक व वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन, भविष्य की प्रतिक्रियाओं व दूसरे विकल्पों का विश्लेषण बिल्कुल नहीं किया जाता है। कानून निर्माण से सम्बन्धित सामाजिक हित नहीं बल्कि राजनैतिक लाभ देखा जाता है, इसलिए उसे लागू करवाने की मानसिकता बन ही नहीं पाती है। सरकार की मानसिकता, सामाजिक सुधार के लिए व्यक्तियों को शिक्षित करने के स्थान पर कानून बनाने की हो गई है, इसीलिए हर कानून को जनता भार समझने लगती है। भारत में अधिकांश कानून अपूर्ण होते है अर्थात उनकी विभिन्न व्याख्याएं करना सम्भव होता है, इसीलिए उल्लंघन की सम्भावनाएँ भी बढ़ जाती है।

यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि यहाँ कानून तोड़ना शर्म की नहीं बल्कि फख्र की बात मानी जाती है। आम धारणा यह बन गई है कि कोई पहुँच अर्थात हैसियत वाला व्यक्ति ही कानून या नियम तोड़ सकता है। इसी तर्क के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी हैसियत बढ़ाना चाहता है। यही कारण है कि अभी तक हमें लाइन में खड़ा होना तक नहीं आया है। एक कारण यह है कि अब न्याय मिलता नहीं बल्कि बिकने लगा है, इसीलिए कानून तोड़ने का भय समाप्त होता जा रहा है। सिफारिश करवाना आसान होता जा रहा है तथा राजनैतिक जागरूकता बढ़ने के साथ ही साथ कर्त्तव्य परायणता कम होती जा रही है। कानून लागू करवाने के अधिकारी उतने सक्षम, उत्तरदायित्वपूर्ण व लगनशील नहीं रहे है। इन सबका सम्मिलित प्रभाव यह हुआ है कि हमारी छवि कायदे-कानून के विपरीत व्यवहार करने वालो की बन गई है।

□□□

22

पर्यावरण प्रदूषण से बचाव : कडे कदम केवल उपाय

वर्ष 1972 से लगातार विश्वभर में 5 जून को पर्यावरण दिवस के रूप मे मनाए जाने की परम्परा निर्वाध रूप से चली आ रही है, इस दिन पर्यावरण प्रदूषण के खतरों, वैज्ञानिक विश्लेषणो व रोकने के उपायो से सम्बन्धित भाषण व वक्तव्य दिए जाते हैं। इनसे सम्बन्धित समाचारों का प्रकाशन व प्रसारण व्यापक पैमाने पर होता है। सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओ द्वारा संगोष्ठियों, सम्मेलनों, रैलियों व प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता है। पर्यावरण सुधार के नाम पर पिछले वर्षो में अरबो रुपए खर्च किए जा चुके है, लेकिन परिणाम वही ढाक के तीन पात। बेरोजगारी, निरक्षरता, जनसंख्या विस्तार, गरीवी, जलापूर्ति आदि क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में भी 'ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज बढता ही गया' की कहावत चरितार्थ हो रही है। वनों का क्षेत्रफल तैंतीस से घट कर बारह रह गया है, भूमिगत जल का स्तर कई गुना नीचे व भयंकर रूप से प्रदूषित शहरों की संख्या बहुत अधिक हो गई है। नाक पर मॉस्क लगाना फैशन नहीं मजबूरी हो गया है। तापमान बढता हुआ असहनीय स्तर तक पहुँच चुका है, ऋतुएँ अपना क्रम भूल चुकी हैं व अधिकांश बडे शहरों में सूर्यास्त के बाद श्वांस लेना मुश्किल होता जा रहा है। प्रश्न उठता है कि पर्यावरण सुधार के लिए इतने शोर-शरावे, धन खर्च व प्रचार के बावजूद भी कोई सार्थक सुधार क्यों नहीं हो पा रहा है ?

हमारे देश की हर महत्त्वपूर्ण समस्या के पीछे धन व साधनों की नहीं बल्कि राजनैतिक इच्छा शक्ति, प्रशासनिक कुशलता व ईमानदारी, स्तरीय

जनजागृति तथा उत्तरदायित्व निर्धारण व्यवस्था का अभाव होता है। यही कारण इस क्षेत्र की अनुपलब्धि के लिए उत्तरदायी है। पर्यावरण को सर्वाधिक प्रदूषित जगलो की बेरहम कटाई ने किया है। इस कटाई के लिए इमारती लकडी, रेल लाइन के स्लीपर, घरेलू ऊर्जा, अखबारी व सामान्य कागज तथा फर्नीचर उद्योग आदि बहुत से कारण गिनाए जा सकते है, साथ ही झूमर खेती, स्थाई खेती, आवास निर्माण, कल-कारखाने व बॉधो का विस्तार, रेगिस्तान के फेलाव, बाढ की विभीषिका, जगल की आग जेसे कारण भी महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी रहे ह। इसका यह मतलब बिल्कुल नही है कि पर्यावरण सुधार या रक्षा के नाम पर विकास की प्रत्येक प्रक्रिया को रोक दिया जाए। हॉ, इस सम्बन्ध मे धैर्य एव अतिरिक्त समझ की आवश्यकता थी व अभी भी है। देश मे देर से ही सही लेकिन ऐसे कानून अवश्य बने है कि ओद्योगिक इकाइयो की स्थापना बॉधो के निर्माण या किसी अन्य कारण से जगलो को नष्ट करने की जरूरत पडती भी है तो उतने ही पौधे अन्य स्थान पर लगाने पडे। इसी प्रकार जब स्थापित ओद्योगिक इकाइयो के लिए आसपास इतने पेड लगाना जरूरी है, जिससे सम्बन्धित क्षेत्र का वातावरण दूषित न हो सके। अवशेष पदार्थो को यथोचित व हानिरहित तरीको से काम में लेना भी कानूनी रूप से आवश्यक होता है, लेकिन भ्रष्ट, अकर्मण्य व उत्तरदायित्वहीन प्रशासनिक व्यवस्था ने सब कुछ गुड-गोबर कर रखा है। यही कारण है कि इतने कानूनो के बावजूद भी नदियो मे फैक्ट्रियो के गदे व रसायनयुक्त हानिकारक पानी के निरन्तर बहाव, बहुत ही कम ऊँचाई वाली चिमनियो व वाहनो से निकलने वाले धुएँ, हानिकारक रसायनिक गैसो के रिसाव व आवासीय कॉलोनियों के फैक्ट्रीकरण की प्रक्रिया पर जरा सी भी लगाम नही लग पायी है। आवासीय कॉलोनियो के कारण प्रति वर्ष हजारो वर्ग किलोमीटर भूमि खेतो व पेड पौधो से दूर की जा रही है, लेकिन कानूनी व्यवस्था के बावजूद भी उनके पार्कों में हरियाली व सडको के किनारे पेड नही लगाए जा रहे है। सामाजिक वानिकी के नाम पर प्रति वर्ष अरबों रुपए सरकारी सहायता के रूप मे उपलब्ध करवाए जा रहे है, लेकिन इस योजना के अन्तर्गत जमीन हड़पो एव सहायता गटको का अभियान चलने के अलावा कुछ नही हुआ है। पता नहीं योजना बनाने,

आर्थिक सहायता स्वीकृत करने तथा सम्पादित कार्यो का निरीक्षण व सत्यापन करने वाले अधिकारियों को कार्य नही होने की स्थिति मे पूछा क्यो नही जाता है? उदाहरणार्थ जयपुर विकास प्राधिकरण द्वारा ही प्रति वर्ष लाखो की सख्या मे पेड लगाए जाने का दावा किया जाता है, लेकिन जयपुर मे हरियाली हर वर्ष कम होती जा रही है। निश्चय ही सम्बन्धित अधिकारी किसी न किसी रूप मे तो इसके लिए उत्तरदायी हे ही तो फिर वर्षो-वर्षो से उन्हे अभयदान क्यो दिया हुआ है ? निश्चय ही ऐसा करने के लिए जिस राजनैतिक इच्छा शक्ति व निष्पक्ष निर्णय क्षमता की आवश्यकता होती है वह अधिकाश राजनीतिवाजो मे नहीं है। सत्य तो यह है कि जिन्हे स्व हितो की पूर्ति, मुद्रा के सग्रह व विलासितापूर्ण जीवन यापन से ही फुर्सत नहीं है उनमे ऐसी आशा करना बेकार है।

बडी अजीब स्थिति है कि जंगलों के होते जा रहे सफाए के कारण मानव जाति के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है और सरकारी इमारतों मे ही लकडी का उपयोग पागलपन की सीमा तक बढता जा रहा है। देश मे खाना पकाने के लिए अस्सी प्रतिशत ऊर्जा लकडी से प्राप्त होती है व दूसरी ओर करोडों टन गैस संग्रह सुविधाओं के अभाव में प्रति वर्ष बेकार चली जाती है। आखिर ऐसी कौनसी बाधा है कि मकान बनाने, फर्नीचर निर्माण आदि मे लकडी के उपयोग को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। विशेष रूप से तब जब कि स्टील, एल्यूमिनियम आदि के रूप में अधिक अच्छे व सस्ते विकल्प उपलब्ध हैं। इसी प्रकार कागज के एक ओर ही लिखने, हासिया छोडने, हर समय नए कागज का उपयोग करने, नए प्रश्न का उत्तर नए पृष्ठ से प्रारम्भ करने, हर कार्य के लिए नई उत्तर पुस्तिका का उपयोग करने जैसी विलासितापूर्ण परम्पराओं को अब जारी नहीं रखा जा सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण के लिए एक महत्वपूर्ण कारण भूमिगत जल का अंधाधुंध उपयोग है। आश्चर्य है कि जल को राष्ट्रीय सम्पदा घोषित किया गया है उसकी बर्बादी के नियंत्रण के लिए अभी तक कानून बनाने की बात तो दूर गम्भीर चिन्तन तक प्रारम्भ नहीं हुआ है। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति तो यह है कि अनियोजित व्यवस्था के कारण अधिक विकट समस्या पानी की कमी की न

होकर उसकी अधिकता की है। पानी की अधिकता के कारण ही हजारो एकड भूमि लवणीय होकर हरियालीरहित हो गई है। बाढ की विनाश लीला हजारो लाखो लोगो के दुर्भाग्य का स्थाई तत्व ही नहीं हो गई है बल्कि इस कारण से कितने वन नष्ट व कितनी भूमि अनुपजाऊ हो गई है इसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है। एक क्षेत्र या वर्ग विशेष को अनावश्यक रूप से अधिक पानी देने के कारण ही बाकी लाखो-करोडो को प्यासा रहना पडता है। यह कैसा विडम्बना है कि भूमिगत जल स्तर के निरन्तर व तेजी से नीचे होते जाने पर भी निजी ट्यूबवेल्स पर किसी प्रकार का नियत्रण या कराधान नहीं है। अब समय आ चुका है जब पानी के उपयोग मूल्य को ध्यान मे रख कर ही उसका विनिमय मूल्य निर्धारित करना होगा, साथ ही जलापूर्ति शुल्क को प्रगतिशील, पानी के दुरुपयोग को दण्डनीय, निजी कुओ को प्रतिबधित या नियमित, वर्षा के जल के उपयोग को आवश्यक करना होगा, तब ही पर्यावरण व मानव के अस्तित्व की रक्षा की जा सकती है।

पर्यावरण प्रदूषण का एक और महत्वपूर्ण कारण है वाहनो से निकलने वाला धुआँ जो बहुत अधिक जहरीला व हानिकारक होता है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि ग्रीस की राजधानी एथेन्स की तरह वाहन के प्रयोग पर प्रतिबध ही लगा दिया जाए। हाँ, लेकिन हम इतने ही बेफिक्र रहे तो हमारे यहाँ के कलकत्ता, दिल्ली व जयपुर जेसे शहरो मे ऐसा भी किए जाने के लिए निकट भविष्य मे ही मजबूर होना पड सकता है। उदाहरणार्थ जयपुर शहर मे टैम्पो व विक्रम जितना प्रदूषण फलाते है उतना शायद बाकी सभी वाहन मिल कर भी नही फैलाते है। इस तथ्य को विभिन्न अध्ययनो ने सिद्ध भी कर दिया है, लेकिन फिर भी अनेको निर्णयो के बावजूद भी वोट राजनीति के चलते उनको सडको से हटाया नही जा सका है। इसी प्रकार जरूरत से ज्यादा धुआँ छोडने वाले अन्य वाहन भी बेरोकटोक चल रहे है। कारखानो से उठने वाले धुआँ से ताजमहल तक प्रभावित हो रहा है तो इस क्षेत्र मे मानव का क्या हाल होगा किसी को चिन्ता नहीं है।

मल-मूत्र निकासी की समुचित व्यवस्था के अभाव ने भी विकराल समस्याएँ खडी कर दी है। हमारे यहाँ तो किसी भी सार्वजनिक स्थल पर मल-

मूत्र त्याग करना जन सामान्य का अधिकार सा बन गया है। इसके लिए सोच व सुविधाएँ दोनों की कमी ही उत्तरदायी है। दूरदराज के गाँवों व आदिवासी क्षेत्रों में तो आधुनिक सुविधाओं की कल्पना ही नहीं की जाती है, लेकिन इस स्वच्छंद व्यवहार से कितनी बीमारियों को फलने-फूलने का मौका मिलता है, यह बिल्कुल अकल्पनीय है। हर बड़े शहर को सडाध का पर्यायवाची कहा जा सकता है। पानी की लाइन में गटर लाइन के मिल जाने पर भी हमारा धैर्य ही नहीं बल्कि आलस्य भी जवाब नहीं देता है। कई बार तो ऐसा सप्ताहों तक चलता रहता है, लेकिन न प्रशासन जागता है न जनता की नीद खुलती है।

यह तथ्य तो बताने लायक रहे ही नहीं हैं कि परमाणु व हाइड्रोजन विस्फोटों, शीतलकारी उपायों, पेट्रोल के कुओं व कोयले की खानों में वर्षों से लगी आग, युद्ध सामग्री के उपयोग आदि के कारण पृथ्वी का पर्यावरण बहुत अधिक विकृत हो चुका है। ऐसे में इसे प्रलयकारी स्थिति तक पहुँचने मे रोकने के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सामूहिक व कठोर कदमों के उठाए जाने व व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़े बिना काम चलना मुश्किल है। इसके लिए प्रदर्शन की नहीं बल्कि काम की जरूरत है। काम भी केवल सभा, सम्मेलन, संगोष्ठियाँ, रैलियाँ, निबंध प्रतियोगिताएँ आदि आयोजित तक ही सीमित नहीं होकर पेड़ लगाने, जंगलों को बचाने, वैकल्पिक उपायों को अपनाने जैसे होने चाहिए, तब ही मानव जाति के अस्तित्व पर आए भयानक संकट के हल में कुछ सहयोग दिया जा सकता है।

□□□

23

स्वदेशी जागरण : जरूरी है तो होता क्यों नहीं ?

आज चारो ओर 'स्वदेशी अपनाओ देश बचाओ' नारे की धूम मची हुई है। विदेशी वस्तुओ व बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के विरुद्ध दिल खोलकर बोला व लिखा जा रहा है। कहीं-कहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के उत्पादनों की होली भी जलाई जा रही है। स्वदेशी अपनाने को प्रेरित करने के लिए प्रभात फेरियाँ, जुलूस व रैलियाँ निकाली जा रही है, धरने दिए जा रहे है व रास्ते रोके जा रहे है। प्रश्न उठता है यह सब कुछ वास्तव मे ही क्या स्व, स्वाभिमान व स्वावलम्बन की भावना से प्रेरित होकर किया जा रहा है या यह भी सत्ता, धन व प्रचार के भूखे राजनैतिक खिलाडियो के जनमत को अपनी ओर आकर्षित करने का एक नया खेल है ? यह आशका व्यक्त किए जाने का कारण यही है कि जो बीजेपी शुरू से निजीकरण, उदारीकरण व वैश्वीकरण का प्रबल समर्थन करती आ रही है वह ही आज इस आदोलन की अगवाई कर रही है। आश्चर्यजनक स्थिति तो यह है कि जिन साम्यवादी व मार्क्सवादी दलो को अपने वैचारिक मूलाधार के कारण इस क्षेत्र मे सबसे आगे होना चाहिए था, बस विरोध का दिखावा भर कर रहे है। दुख तो इस बात का है कि सभी सर्वोदयी, गाधीवादी व लोहियावादी जो मन, वचन व कर्म से स्वदेशी के पर्याय रहे है एक प्रकार से मौन साधे हुए है। इस जडता को तोडे बिना न तो विदेशी का विरोध, न स्वदेशी का सार्थक व प्रभावी समर्थन किया जा सकता है। जरूरत इस बात की है कि विदेशी के खतरो को जानने व जताने के साथ ही हम यह भी जाने कि स्वदेशी मे हमारा आशय क्या है व विदेशी का विरोध कर हम विकल्प के रूप मे क्या व क्यो करना चाहते है ?

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सम्पूर्ण स्वदेशीकरण व स्वावलम्बन की बाते करना स्वप्न लोक मे विचरण व मानसिक हरकत करते रहने के अलावा कुछ नही है। विश्व मे आज भौगोलिक दूरियाँ जिस प्रकार कम, संदेशवाहन के साधन सुलभ, सस्ते व शीघ्रगामी, शैक्षणिक व सांस्कृतिक आदान-प्रदान स्वाभाविक व तीव्र उपभोक्तावादी दृष्टिकोण व विचारो की उन्मुक्तता का विस्तार तथा अन्तरराष्ट्रीय राजनीति व अर्थव्यवस्था का एकीकरण हो रहा है, उसमे गाधी व विनोबा के विचारो को अक्षरश लागू करना न तो सम्भव ही है और न आवश्यक ही। समय की धारा को न तो कोई रोक सका है और न ही रोक सकता है। हाँ, धारा के इस बहाव मे सही, व्यावहारिक नियोजन व दृढ इच्छाशक्ति से डूबने से अवश्य बच सकते है। यहाँ प्रति-प्रश्न यह उठता है कि क्या हम वास्तव में ही डूबने की स्थिति मे पहुँच गए है ? देश पर 3.5 लाख करोड रुपए का विदेशी व चार लाख करोड रुपए का आन्तरिक कर्ज, 46 हजार करोड रुपए प्रति वर्ष ब्याज का भुगतान, आठ करोड बेरोजगारों की फौज, 45 करोड अभागे निरक्षर, 35 करोड अत्यधिक गरीब इस पर भी पाँच हजार बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का अस्तित्व तो इसी बात की पुष्टि करता है। यह स्थिति निश्चय ही हास्यास्पद है कि जिस देश को संसार की महत्त्वपूर्ण अन्तरिक्ष, परमाणु, हथियार निर्माण, सैनिक, प्रशिक्षित, श्रम व आर्थिक शक्ति माना जाता है, वहाँ के नागरिक नहाने व धोने के साबुन, टूथपेस्ट, शेविंग क्रीम, ब्लेड, लिपिस्टिक, पाउडर, बिस्किट, चाय, काफी, शीतल पेय, आइसक्रीम, माचिस, पैन, बूट पालिश, टायर, अचार, चटनी आदि सामान्य उपयोग की वस्तुओं के लिए भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से विदेशों या विदेशियों पर निर्भर करते हैं। दुखद आश्चर्य तो यह है कि हमारी निर्भरता दीवानगी की सीमा को भी पार कर चुकी है। हम थोथी प्रतिष्ठा व आधुनिकता के जुनून में अच्छी-बुरी वस्तु का भेद करना ही भूल गए हैं। हम प्रचार व प्रोपेगण्डा के सामने नत मस्तक होते जा रहे है। हमारी तर्क करने, तटस्थ विश्लेषण करने व सही को खुल कर कहने की ताकत जैसे समाप्त ही हो गई है। सब्सिडी समाप्त या कम करने, विद्युत व जल आपूर्ति की दरें बढाने, सार्वजनिक क्षेत्र को निजी हाथों में सौंपने, प्रचार-प्रसार माध्यमो को

खुला छोड़ने, शिक्षा व्यवस्था, चिकित्सा सुविधाओं व प्रशिक्षण कार्यों को महँगा करने, गरीबी उन्मूलन व अन्य सामाजिक सेवा कार्यों से ध्यान हटाने व घाटा कम करने के मामलों में हम विश्व बैंक यानि अमेरिका के इशारों पर नाचने के अलावा कुछ नहीं कर पा रहे है। आश्चर्य है विदेशी ऋणों से बढ़े विदेशी मुद्रा भण्डार पर हम इतरा रहे है। हम निश्चय ही धीरे-धीरे विदेशी तकनीक, पूँजी व प्रबन्ध के शिकंजे में फसते ही नहीं जा रहे है बल्कि हमारे धर्म चिन्तन, आदतो व्यवहार सहित हर कर्म पर विदेश व विदेशी प्रभाव हावी होता जा रहा है।

चिन्ता की बात तो यह है कि अंग्रेजो या अमेरिकियों की समय की पाबंदी, काम के समय केवल काम व मौज के समय केवल मौज, स्त्री-पुरुष की समानता, राष्ट्र भक्ति, खुले विचार जैसे सद्गुणो का अनुसरण हम नहीं कर पा रहे है, लेकिन एकाकी परिवार व्यवस्था, मद्यपान के सेवन, नशीले पदार्थो के उपयोग तलाक, स्वच्छंद यौन सम्बन्धो, अश्लीलतापूर्ण प्रदर्शनो, अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा, एलोपेथी से इलाज, बेड टी, देरी से उठने जैसी अनेको बुराइयो को अधभक्ति से अपनाते जा रहे है। बच्चो के साथ बैठकर ऐसी-वैसी फिल्म देखने, टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलने, टाई वाले स्कूल में बच्चो को पढ़ने भेजने, दो साल के बच्चे को ही टूथब्रुश हाथ मे पकड़ा देने, बच्चों को होस्टल में रखने, नवजात शिशु को माँ के दूध से वंचित करने, दूध, दही से परहेज करने ब्यूटीपार्लर के चक्कर लगाते रहने, मुँह मे हर समय च्विंगम चबाते रहने, तेज आवाज मे पश्चिमी फूहड संगीत सुनने के स्थान पर दूसरो को परेशान करने, कुर्सी पर बैठ कर खाना खाने को ही हम शान की बात समझने लगे है। आज परम्परागत तीज-त्योहारो, रीति-रिवाजो, मेलो का स्थान फेर व फेट लेते जा रहे है। विवाह जैसे अवसरो पर भी फिल्मी गानो का नशा हमारे सिर पर चढ़कर बोलता रहता है व पंजीकरण के माध्यम से होने वाली शादियों का चलन बढ़ता जा रहा है।

आर्थिक क्षेत्र मे तो पश्चिमी प्रभाव सभी सीमाओ को पार कर रहा है। नर को नारायण और गरीब की सेवा को भगवान की सेवा मानने की मान्यता वाले इस देश मे श्रेष्ठ को ही जिन्दा रहने का अधिकार है की पश्चिमी मान्यता

को पूर्ण रूप से अंगीकार कर लिया है। दो हजार के करीब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को हमने लाखो लघु इकाइयो को रौंदने, पश्चिमी देशो मे प्रतिबधित पॉच सौ प्रकार की दवाइयो को भारतीय बाजारो मे बेचने का अधिकार देकर जीवन के साथ खिलवाड करने देने, कुल विनियोजित पूँजी के बराबर प्रति वर्ष विदेशी मुद्रा बाहर ले जाने देने की खुली छूट देकर पता नहीं हम इतरा क्यो रहे है ? गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी, अपोष्टिक खानपान व बाल मृत्यु जैसी आधारभूत समस्याओ से हमारा ध्यान पूरी तरह हट सा गया है। उसके स्थान पर हम उदारीकरण, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण, रुपए की परिवर्तनशीलता व विदेशी निवेश के मुद्दो पर बहस करने मे लग गए हैं, जिसका हमारी परम्पराओ, सोच व आवश्यकता से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि हमारी सस्कृति तो सादा जीवन उच्च विचार, परमार्थ को वरीयता व भोगने के स्थान पर छोडने की रही है।

इस संदर्भ में स्वाभाविक प्रश्न यही उठता है कि जब हमारा वर्तमान इतना अधकारमय है तो भविष्य कितना कष्टदायी होगा ? निश्चय ही इसकी शायद हम कल्पना भी नहीं कर पा रहे हैं, तो फिर इसका हल क्या है ? इसका हल स्वदेशी के नाम पर राजनीति करने मे नहीं बल्कि उसे अपनाने मे ही है। इस सम्बन्ध में वचन का कर्म से मेल बैठाना बहुत आवश्यक है, क्योंकि स्वदेशी वचन में नहीं बल्कि भावना में निहित है।

स्वदेशी जागरण कोलगेट, पॉण्ड्स, कॉम्पलान, ग्लूकोन डी या सिन्थॉल के डिब्बे मे से माल निकाल कर उसे सार्वजनिक रूप से जलाने, शराब पीकर मदिरा निषेध के सम्बन्ध में गला फाड-फाड कर भाषण देने, ससद व विधायिकाओं में काम रुकवाने, प्रदर्शन या हडतालें करवाने से होने वाला नहीं है। इसके लिए तो जन-जन तक सम्बन्धित जानकारियाँ तर्कपूर्ण ढंग से पहुँचाने, स्वदेशी उत्पादों की गुणवत्ता बढाने, विज्ञापन के अधिक सार्थक व प्रभावी तरीकों के अपनाने के साथ ही अभियान चला कर स्वदेशी पहनावे व खानपान का प्रदर्शन करने की जरूरत है। इस अभियान में लगे व्यक्तियों को अपना आचरण, व्यवहार व सोच उसी के अनुरूप बनाना पडेगा तथा विदेशी से हर प्रकार का मोह त्यागना होगा। स्वदेशी जागरण का अभियान चलाने

वालो के बच्चे कान्वेन्ट स्कूलो या विदेश मे पढे, हिन्दी से परहेज करें, बहुराष्ट्रीय कम्पनियो मे ऊँचे पद प्राप्त करें, विदेशियो से शादी के रिश्ते बनाएँ तो उनका प्रभाव जनता पर नही पड सकता है ? इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि केवल विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार से ही स्वदेशी का सदेश नहीं दिया जा सकता ह। इसके लिए तो एक साथ पश्चिमी सगीत, नृत्य, सिनेमा, टेलीविजन, खानपान व रहन-महन के तरीको, शृगार की भाव-भगिमाओ, सौन्दर्य प्रतियोगिताओ के आयोजनो, प्रोपेगण्डा के माध्यमो आदि पर सगठित रूप से चोट करने की आवश्यकता ह। जनतत्र मे सबसे बडी चोट तो चुनावो के समय मतदाता दे सकता है। जसा उसने हाल ही के विधानसभा चुनावो मे किया। बात सही भी है जब तक सरकार को स्वदेशी का पक्षधर नही बनाया जाता है, बाकी प्रयत्न बेकार या कम प्रभावी ही रहेंगे, क्योकि निर्णय का अधिकार तो उसी के पास है। यह सब कुछ अनुनय-विनय से होने वाला नहीं है। इसके लिए तो दबाव बनाना ही सही हल है, जो शायद सच्चे गाँधीवादियो व गैर-राजनतिक व्यक्तियो के नेतृत्व मे आदोलन चला कर ही किया जा सकता ह।

□□□

24

प्रतिमाओं को दूध पिलाने वालों की चाल : विकृत मानसिकता का बुरा हाल

देशभर मे गणेश व शिव परिवार की प्रतिमाओ द्वारा दुग्ध पान की खबरें या अफवाह जिस रहस्यपूर्ण तरीके से अचानक फैली और लाखो करोडो की संख्या मे शिक्षित व निरक्षर, वैज्ञानिक व धर्मान्ध, बडे सरकारी अधिकारी व राजनीतिक, शहरी व ग्रामीण, बच्चे व बुजुर्ग तथा अमीर व गरीब हाथो में दूध के बर्तन व चम्मच लेकर बिना कुछ सोचे समझे सडको पर निकल पडे वह चाहे भगवान का न सही लेकिन चमत्कार अवश्य था। इस खबर के कारण एक साथ पूरे देश मे सरकारी, अर्द्ध सरकारी दफ्तर, विद्यालय एवं महाविद्यालय, वैज्ञानिक शोध संस्थान, पुलिसकर्मियों के कार्यस्थल आदि कुछ ही समय में खाली हो गए। दूध के भाव आसमान तक चढ गए, यातायात व्यवस्था पूरी तरह से बेकाबू हो गई। एक तरह से पूरा राष्ट्र सम्मोहन वाली चरम की स्थिति में पहुँच गया था। प्रशासन व राजनैतिक तथा सामाजिक नेतृत्व कुछ भी करने या सोचने की स्थिति में नहीं था। हर कोई चमत्कार के सामने भौचक्का सा हो रहा था। आश्चर्य तो यह है कि अमेरिका, ब्रिटेन, मारिशस, सिंगापुर, हांगकांग जैसे राष्ट्रों में स्थित ऐसी प्रतिमाओं के सामने भी भीड का ऐतिहासिक सैलाब उमड रहा था, सैकडों टेलीविजन कम्पनियाँ अभूतपूर्व दृश्यों को धडाधड अपने कैमरों में कैद करे जा रही थीं। विस्मयकारी तथ्य तो यह है कि उन देशों में इसको ईश्वरीय चमत्कार के अलावा और कुछ मानने को कोई तैयार ही नहीं था। प्रश्न उठता है आखिर यह सब कुछ था क्या ? गणेश व शिव का चमत्कार या कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा फैलाई केवल अफवाह मात्र। जैसा कि

हमारे देश में होता है। इस घटना को भी राजनीतिबाजों ने अपने तरह से परिभाषित किया है। बीजेपी, विश्व हिन्दू परिषद व शिवसेना के पदाधिकारियों ने इसे चमत्कार ही नहीं माना, बल्कि प्रतिमाओं को सार्वजनिक रूप से व कई स्थानों पर समारोहपूर्वक दुग्धपान करवाया। फोटो खिचवाए व चमत्कार को ईश्वर की महिमा बताते हुए उसका प्रचार किया। विभिन्न व्यक्तियों व पक्षों ने इसके नकारात्मक व सकारात्मक प्रयासों की व्याख्या की। नेमीचन्द जैन उर्फ चन्द्रास्वामी ने बहती गंगा में हाथ धोते हुए इसे अपना ही चमत्कार बता दिया। कांग्रेस (इ) को इसमें बीजेपी व आर एस एस के अफवाह फैलाऊ तत्वों का षड्यंत्र नजर आता है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में यह दृष्टिभ्रम से ज्यादा कुछ नहीं है। उनके अनुसार प्रतिमाओं द्वारा दूध पीने जैसी हरकत का कारण सतह तनाव, मिट्टी की प्रतिमा द्वारा उसे सोखना व स्वेत संगमरमर में बहता हुआ दूध दिखाई नहीं देना है। वास्तविकता क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रद्धातिरेक से ओतप्रोत व धर्मभीरु व्यक्तियों को न तो दिया ही जा सकता है और न ही ऐसी आवश्यकता ही है, जो राजनैतिक हितों के आगे कुछ देख या सुन नहीं पाते हैं तथा इसके लिए कुछ भी बुरा करने को हमेशा तैयार रहते हैं। उनके सामने भी वैज्ञानिक तर्क रखना बेकार ही है।

चिन्तन नहीं बल्कि चिंता का विषय तो यह है कि जिस देश में किसी अफवाह को इतनी आसानी व सुनियोजित तरीके से इतने बड़े पैमाने पर कभी भी फैलाया जा सकता हो वहाँ सरकार, प्रशासन, पुलिस व्यवस्था व खुफिया तंत्र होने व उन पर अरबों रुपए प्रति वर्ष खर्च करने का आखिर मतलब क्या है? दुर्भाग्य से किसी अनहोनी घटना से पूरे देश को लकवाग्रस्त कर देने की यह प्रथम घटना नहीं बल्कि कहा जाना चाहिए दुर्घटना है। इससे पूर्व भी धर्म व देवताओं के नाम पर ही महिलाओं द्वारा एक निश्चित दिवस को खास किस्म की चूड़ियाँ पहनना, जिससे सुहाग की रक्षा हो सके, पुत्र की रक्षा के लिए जलेबी खाना, घरों के बाहर मेहदी के छापे लगाना, ननद को साड़ी भेंट करना जैसी अफवाहें इसी तरह फल चुकी हैं। आपातकाल के दौरान एक विशेष संगठन के द्वारा बच्चों के पैरों में नपुसकता पैदा करने वाले इंजेक्शन लगाए जाने की अफवाह जिस राजनैतिक उद्देश्य के लिए इसी प्रकार फैलाई गई थी

वह अब इतिहास का विषय बन चुका है। उस समय भी प्रशासनिक मेधा के उच्चाधिकारियों से लेकर सामान्य मजदूर तक अपने बच्चों को लेने स्कूलों की ओर दौड़ता नजर आ रहा था, जबकि उस बात का जरा-सा भी आधार कहीं नहीं था। वह तो बिना राई के ही पहाड़ बनने वाली बात थी। सामान्य प्रशासन उस समय भी पूरी तरह पगु बना रहा था। उसी समय अपने को सर्वाधिक राष्ट्रवादी मानने वाले सगठन ने ही ग्रामीण क्षेत्रों मे जबरदस्ती नसबदी किए जाने की अफवाहें फैला कर पूरे देश मे अराजकता व भय का वातावरण फैला दिया था। इस अकेली अफवाह मे परिवार नियोजन कार्यक्रम व राष्ट्रीय हितों को कितना आघात लगा इसकी कल्पना भी नही की जा सकती है। आश्चर्य तो यह है कि ऐसी अफवाहों के असली सूत्रधार कभी भी पकड़ मे नहीं आए। इसके स्पष्टत दो ही कारण हो सकते हैं। या तो अफवाहबाजों का गिरोह सुदृढ़ व नियोजित है या प्रशासनिक ढांचा निष्प्रभावी। इनमें से सही चाहे कोई भी परिस्थिति हो, लेकिन राष्ट्रीय एकता, अखण्डता व सुरक्षा की दृष्टि से यह बहुत की *खतरनाक बात है।*

प्रतिमाओं द्वारा दुग्ध पान की अफवाहों को वैज्ञानिकों, समाज सुधारकों, *प्रबुद्ध समझे जाने वाले नागरिकों, धर्म गुरुओं व स्वयंशीर्ष राजनेताओं द्वारा* समय रहते स्पष्ट नहीं किया जाना निश्चय ही राष्ट्रीय व सामाजिक अपराध है। दुर्घटना हो जाने के बाद केन्द्र में सत्ताधारी दल के प्रवक्ता विट्ठल गाडगिल द्वारा यह बयान दिया जाना कि आर.एस.एस. अफवाह फैलाने की शानदार मशीन है व बीजेपी राजनैतिक उद्देश्यों के लिए जनता की भावनाएँ भड़काने में माहिर है, बकवास से ज्यादा कुछ नहीं है। गाडगिल से यह पूछा ही जाना चाहिए कि ऐसी अफवाहों के समय व इससे पूर्व खुफिया मशीनरी के सोते रहने, प्रशासन के निष्प्रभावी रहने व दूरदर्शन व आकाशवाणी जैसे सशक्त प्रसार माध्यमों द्वारा आग में घी का काम करने जैसी हरकतों के लिए उनके दल की केन्द्रीय सरकार दोषी व अपराधी क्यों नहीं है ? हर बार अफवाह फैलाने वालों की काट के लिए कोई भी प्रभावी उपाय क्यों नहीं किया जा सकता है ? उनके दल से तो भारत में मानवाधिकारों का व्यापक हनन, कश्मीर में कत्लेआम, मुसलमानों के साथ दूसरी श्रेणी के नागरिकों जैसा व्यवहार,

भारत द्वारा पाकिस्तान के आन्तरिक मामलो मे सीधा हस्तक्षेप जैसी अफवाहो का खण्डन तक नही होता है, जबकि ऐसी ही अफवाहो के कारण नैतिक, सामरिक व आर्थिक हित व्यापक रूप से प्रभावित हो रहे है। लगता है देश मे सरकार जैसी कोई बात है ही नही। तब ही तो दुग्ध पान जैसी सरासर थोथी, अधविश्वास व रूढियो को बढ़ावा देने व निकम्मेपन को प्रोत्साहित करने वाली बात का खुलआम समर्थन सर्वाधिक उत्तरदायी लोग ही सबसे अधिक कर रहे है। भोलीभाली जनता को फुसलाने व दहशत मे डालने वाले बयानो पर आखिर रोक लगाई क्यो नही जाती है। चन्द्रास्वामी जैसे ठगो, पाखण्डी व हर प्रकार मे सदिग्ध आचरण वाले व्यक्तियो को प्रोत्साहन दिए जाने की क्यो इजाजत दी जा रही ह कि यह सब कुछ उसी की प्रार्थना पर हुआ। इसी सदर्भ मे डा गणपति चन्द्र गुप्त का वह बयान भी पाखण्ड फैलाने वाला ही माना जाना चाहिए कि दुग्ध पान की वह क्रिया भोलेनाथ के आगमन का पूर्व सकेत है। उन्होने तो उस बालक की जन्म तिथि व माता-पिता का नाम तक घोषित कर दिया है। यह तो विचार अभिव्यक्ति के नाम पर स्वच्छंदतापूर्वक पाखण्डो को प्रचारित कर समाज को विकृत करना ही हुआ, तो फिर ऐसे पाखण्डियों को रोकने के स्थान पर बार-बार उनके पाँवो मे अपना माथा लगाने, उनके काले कारनामो को छिपाने व उन्हे हर प्रकार के कानून व नियम से ऊपर मानने का क्या मतलब है ? लोगो की धार्मिक भावनाओ को व्यक्तिगत स्वार्थो के लिए इस प्रकार काम मे लेने देना लोकतान्त्रिक मूल्य व कानूनी दायित्व से पलायन करना ही माना जाएगा।

सरकार व समाज दोनो को ही चुनौती के पर मे इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि ऐसी अतर्कपूर्ण व आधारहीन बातो के तर्कपूर्ण व वैज्ञानिक विश्लेषणों को आम जनता के साथ ही सम्भ्रान्त कहे जाने वाली जमात के लोग भी स्वीकार क्यो नहीं करते है। राजस्थान के उपमुख्यमत्री भाभडा व प्रशासनिक अधिकारी सिसोदिया जैसे लोगो द्वारा कुछ मिलने वालो की लाइन मे लगना तो इसी बात को प्रमाणित करता है कि यह सब नाटक अध विश्वास व अफवाह पर आधारित था तो इस सबको पहले ही दिन ऐसे महत्त्वपूर्ण लोगो को प्रताडित व दण्डित क्यो नही किया जाना चाहिए ? दण्ड के हकदार

तो खुफिया सेवाओं में लगे अधिकारी भी है जो किसी भी प्रकार का पूर्वानुमान नहीं लगा सके हैं। भविष्य में यह भी हो सकता है कि पाकिस्तान जैसे शत्रु राष्ट्र की कोई संस्था या भारत में काम कर रहे उनके एजेन्ट देश मे अव्यवस्था फैलाने के लिए साम्प्रदायिक दंगों, विदेशों में हिन्दुओं की सामूहिक हत्या या किसी महत्त्वपूर्ण नेता की अप्राकृतिक मृत्यु की ऐसी ही अफवाह फेला कर अराजकता का माहौल बना दे। आम चुनाव जैसे-जैसे नजदीक आते जा रहे है अफवाहों, धर्मान्धता के जुनून व साम्प्रदायिक तनाव के सहारे केन्द्र में सत्ता प्राप्ति के आकांक्षी यह सब कुछ कभी भी कर सकते है। ऐसे में खुफिया तंत्र तो बहुत सजग रह कर उत्तरदायी बनना चाहिए।

तथ्यों से स्पष्ट है कि चुनावो में सत्ता लायक बहुमत प्राप्त करने के लिए पंथी ताकतें एक साथ मिल कर कई चमत्कार करवाने का प्रयास करेंगी, जिससे भोली-भाली जनता को किसी देवता के नाराज होने या प्रलय होने का भय बता कर एक दल या गुट विशेष को ही मत देने को प्रेरित या बाध्य कर सकें। ऐसा यदि हो जाता है तो भारतीय लोकतंत्र के लिए इससे अधिक अफसोस व सरकार के लिए कलंकित बात दूसरी नही होगी। सरकार का तो यह संवैधानिक दायित्व है कि वह देश में अंधविश्वासों, कलंकित परम्पराओं व कठपुल्लापन को विकसित नहीं होने दे। इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़े भारत के निवासियों का पन्द्रहवीं सदी जैसा व्यवहार निश्चय ही शर्म की बात है। इससे अधिक शर्मनाक बात यह है कि कोई भी जिम्मेदार राजनेता केवल वोटों के लालच में इसका विरोध नहीं कर रहा है। राजनीति भारत को कहाँ ले जाएगी इसका उत्तर किसी के पास नहीं है।

□□□

25

राष्ट्रीय नेताओं के सम्मान के तरीके : कितने सम्मान के योग्य

किसी व्यक्ति का सम्मान दिया जाना हर दृष्टि से व्यक्तिनिष्ठ भाव है अर्थात इसके लिए किसी को भी बाध्य नहीं किया जा सकता है, लेकिन हमारे देश में राजनेताओं की मृत्यु पर राष्ट्रीय शोक मनाने, सार्वजनिक छुट्टी करने, राष्ट्रीय ध्वज में लपेट कर दाह संस्कार करने, जन्म व मृत्यु दिवसों पर अति विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा आदमकद मूर्तियों के माल्यार्पण करने, बस्तियों, बाजारों, विश्वविद्यालयों, अस्पतालों, परियोजनाओं आदि के नामकरण उनके नामों के आधार पर करने जैसी परम्पराएं हैं। वैसी मिसाल के शायद किसी भी लोकतान्त्रिक देश में नहीं है। आश्चर्य है कि पूरे राष्ट्र को एक साथ व अचानक निष्क्रिय ही नहीं बल्कि कर्महीन बनाने वाले सरकारी निर्णय दिवगत नेता को श्रद्धांजलि कार्यक्रमों में सच्चा देशभक्त, कर्मशील, राष्ट्रीय हितों का पोषक, राष्ट्र का निर्माता व जनतान्त्रिक सिद्धान्तों का समर्थक सहित पता नहीं क्या-क्या बताए जाने के साथ ही लिए जाते हैं। प्रश्न उठता है यह सब कुछ करना क्या वास्तव में ही दिवगत नेता का सम्मान है ? इससे भी अधिक महत्वपूर्ण मुद्दा तो यह है कि ऐसा करना क्या लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों, जनभावनाओं एवं सम्मान शब्द का ही अपमान और सामाजिक तथा राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा नहीं है ? अगर ऐसा है तो इसके दूर करने के क्या उपाय हो सकते हैं ?

सोच का मुद्दा यह है कि हमारे देश में हम कार्य करने या निठल्ला बैठे रहने की संस्कृति का विकास करना चाहते हैं ? हमारा इन्हीं मजदूर-कर्मचारी संगठनों या राजनैतिक दलों द्वारा हडताल करने का विरोध व नेता की मृत्यु पर

सरकार द्वारा प्रत्येक काम बंद करवा कर देश को करोडों रुपए का नुकसान करवाने का आखिर आधार क्या है ? आराम हराम है नारे के प्रवर्तक पंडित नेहरू 'जय जवान जय किसान' के शास्त्री, कर्म ही धर्म की समर्थक इंदिरा गांधी, अनुशासन ही जीवन है के पक्षधर मोरारजी देसाई की आत्मा क्या उनकी मृत्यु के उपलक्ष्य में बैंको, बीमा कम्पनियों, पोस्ट आफिस, अनुसंधान केन्द्रों सहित सभी सरकारी व अर्द्ध सरकारी कार्यालयों को बंद कर लाखों व्यापारियों के सामने भुगतान की दैनिक मजदूरी करने वाले मजदूर के सामने पेट भरने की, उद्योगपति के सामने बिना उत्पादन किए ही लागत लगाने की व आम नागरिक के सामने समय गुजारने की समस्या उत्पन्न कर प्रसन्न होगी ? उनके नामो के सामने नारों के जो विशेषण लगाए गए है उनमें यदि कोई सत्यता है तो उनकी आत्मा ऐसा करने से प्रसन्न हो ही नही सकती है। अगर प्रसन्न होती है तो उनके बारे में कही बातें गलत है। दोनों ही परिस्थितियों मे यह सब कुछ करने की आवश्यकता नही होती है।

हमारे संविधान का मूलाधार व्यक्ति पूजा, एकाधिकार व विचार थोपने की प्रवृत्तियों का विरोध करना है, लेकिन नेता के नाम को बनाए रखने के लिए हमारे यहाँ सब कुछ इसके विपरीत किया जाता है। आज भारत का शायद ही कोई बडा शहर हो जहाँ का कोई न कोई बाजार, आवासीय बस्ती, विद्यालय, चिकित्सालय आदि गांधी, इंदिरा या नेहरू के नाम पर न हो। इंदिरा गांधी नहर, इंदिरा आवास, नेहरू रोजगार, जवाहर रोजगार आदि योजनाओं, हजारों चौराहों पर लगी इनकी मूर्तियों व परियोजनाओं पर लगे नाम पट्टों का आखिर मतलब क्या है ? पूर्व निर्धारित समय व लागत से कई गुना अधिक व्यय करने पर भी परियोजनाओं के पूर्ण नहीं होने व अरबों रुपयो की रोजगार योजनाओं के पूर्ण हो जाने पर भी बेरोजगारों की संख्या के तेज गति से बढते जाने से क्या इंदिरा व नेहरू का नाम बदनाम नहीं हो रहा है ? नेताओं की मूर्तियों पर सार्वजनिक रूप से सरकारी कार्यक्रम आयोजित करना व फूल चढवाना क्या उन्हें जबरदस्ती महिमा मंडित करवाना नही है ? ऐसे अवसरों पर उनके तथाकथित गुणों को आकाशवाणी, दूरदर्शन व करोडों रुपए के अखबारी विज्ञापनों के माध्यम से उजागर करना व सत्तालोलुपता, व्यक्तिगत उच्चाकांक्षा,

भ्रष्ट आचरण, परिवारवाद, चापलूसी व राजनैतिक अनैतिकता जैसे अवगुणो को जानबूझ कर छिपाना क्या सही कृत्य है ? निश्चय ही बिल्कुल नहीं। सामान्यतया हर राजनेता के राजनैतिक जीवन मे यह बुराइयाँ होती हे तथा उसकी एक ही भूल या गलती उसकी प्रत्येक अच्छाई को धो देने के लिए पर्याप्त होती है। इसके लिए सम्पूर्ण राष्ट्र उसे क्षमा नही कर सकता है। उदाहरण के लिए कश्मीर मे भारतीय फौज की तूफानी गति को रोक कर पंडित नेहरू द्वारा युद्ध विराम व आत्म निर्णय की बात को स्वीकार करना, इंदिरा गाधी द्वारा लोकतंत्र को कलंकित करने वाला आपातकाल लगाना, वी पी सिंह द्वारा मंडल आयोग के माध्यम से सम्पूर्ण देश को स्थायी जातीय द्वेष व दंगो मे झोक देना, नरसिंह राव द्वारा बाबरी मस्जिद को तोडने देकर साम्प्रादयिक व धार्मिक उन्माद तथा टकराव को स्थायी बना देना किस गुनाह से कम है ? उनके एक ही निर्णय के कारण राष्ट्र को कितना आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक नुकसान उठाना पडा है, इसकी शायद कल्पना भी नहीं की जा सकती हे, तो फिर ऐसे व्यक्तियो को राष्ट्रीय ध्वज मे लिपटा कर दफनाना, उसे आधा झुका देना और सेना से सलामी दिलवाना क्या उनका अपमान नहीं है ? राष्ट्रीय ध्वज ऐसी वस्तु नही है जिसमे लिपटा कर देशद्रोह, अलगाववाद, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक उन्माद विस्तार व सविधान के अपमान के आरोपियो को अतिम विदाई दी जाए। इतिहास इस बात का गवाह है कि अधिकाश मामलो मे ऐसा ही होता है।

एक विचारणीय बिन्दु यह है कि प्रत्येक प्रधानमत्री, मुख्यमत्री व मत्री को राष्ट्रीय सम्मान दिए जाने के लायक मानना क्यों अनिवार्य है तथा वैसा सम्मान उच्चतम दर्जे के साहित्यकार, वैज्ञानिक, प्राध्यापक, प्रबंधक, लेखक व अर्थशास्त्री को क्यो नही दिया जाता है ? यदि सार्वजनिक अवकाश की घोषणा, ध्वज का आधा झुकना व दूरदर्शन तथा आकाशवाणी पर मातमी धुन बजाना ही सम्मान देना है तो ऐसा गैर राजनैतिक व्यक्तियों जो सामान्य मंत्री से बहुत महान व उपयोगी होते है को उसी प्रकार क्यो नही मिलता है ? क्या देश के लिए इनकी उपयोगिता तुलनात्मक रूप मे कम होती है ? निश्चय ही इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर है - नहीं। फिर भी ऐसा होने का केवल कारण राजनीतिबाजो

द्वारा अपनी ही बिरादरी को सर्वोपरि बनाए रखने की एक सुनियोजित चाल है। यह स्थिति निश्चय ही हास्यास्पद है कि राजनीतिज्ञ जिस व्यक्ति के जीवनकाल में उसे भ्रष्ट, देशद्रोही व अकर्मण्य कहते रहते है, उसकी मृत्यु के बाद उसके स्मारक बनाने, विश्वविद्यालय का नामकरण करने, जन्म दिन पर छुट्टी रखने जैसी पुरज़ोर माँगें ही नहीं करते, बल्कि भारत रत्न घोषित किए जाने की माँग भी करते है। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति तो यह है कि राजनैतिक लाभ के लिए ऐसी माँगें मान भी ली जाती हे। तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमंत्री जी रामचन्द्रन को प्रदान किया गया भारत रत्न इस बात का स्पष्ट उदाहरण है। उनके जीवनकाल में उन्हें लिट्टे मे दोस्ती रखने वाला, हिन्दी विरोधी, कट्टर क्षेत्रीयतावादी बल्कि देशद्रोही तक घोषित किया गया, लेकिन केवल मात्र चुनावी गणित को अपने पक्ष में करने के लिए केन्द्र में सत्ताधारी दल ने उन्हे बिल्कुल सामान्य किस्म का राजनेता होते हुए भी भारत रत्न से सम्मानित किया। कटु सत्य तो यह है कि इस घोषणा ने सभी पूर्व भारत रत्न उपाधिधारकों के सम्मान को कम ही किया है।

चिन्तन का विषय यह भी है कि स्वतंत्र प्रतियोगिता, भूमण्डलीकरण और असंरक्षित व्यापार के इस युग में क्या हम साल मे केवल 102 कार्य दिवस रख कर जिनमें वास्तव में कितना काम होता है यह हम सब जानते है अपना अस्तित्व बनाए रख सकते हैं, तो फिर हर नेता की मृत्यु पर दो दिन बर्बाद करके सम्मान देने वाला तरीका आखिर कब तक चलता रह सकता है ? बल्कि क्यों चलता रहना चाहिए ? हमें करोड़ों रुपए प्रति वर्ष रखरखाव लागत वाली प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति जैसे नेताओं की सैकड़ों एकड़ जमीन पर फैली समाधि व्यवस्था पर तथा राष्ट्र व समाज हित में पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। इस कारण से इस गरीब राष्ट्र की उधार पर चल रही अर्थव्यवस्था पर कितना भार पड रहा है इसको जान लेने के बाद किसी भी व्यक्ति को गुस्सा आए बिना नहीं रह सकता है। ज़ी न्यूज़ सर्विस के एक कार्यक्रम में दिए आँकडों के अनुसार पिछले तीन वर्षो में राजघाट के रखरखाव पर 91 करोड, शक्ति स्थल पर 61 करोड, राजीव गांधी की समाधि पर 27 करोड व सबसे कम 7 करोड़ रुपए किसान घाट पर खर्च हुए। पूरे देश में हजारों

की संख्या में बने ऐसे ही स्मारकों व चौराहों पर लगी मूर्तियों पर कितने करोड़ रुपए खर्च होते हैं, यह निश्चय ही शोध का विषय है। दिल्ली में ही समाधि क्षेत्र की कितने अरब रुपयों की बहुमूल्य भूमि बेकार पड़ी हुई है, यह हर भारतीय के सरोकार की बात है। एक समाचार के अनुसार तो किसान घाट के लिए और भूमि उपलब्ध कराने के लिए वहाँ पड़ने वाले थर्मल पावर स्टेशन को ही बंद किए जाने की योजना बन रही है। यह समाचार यदि जरा सा भी सत्य है तो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए इससे अधिक शर्म की बात दूसरी नहीं हो सकती है। जो नेता अपने जीवन काल में शुद्ध राष्ट्रवादी धर्मनिरपेक्ष व लोककल्याण के लिए समर्पित रहे हैं उन्हें उनकी याद केवल राजनैतिक कारणों से सत्तालोलुप भ्रष्ट व स्वार्थी राजनीतिबाजों द्वारा अलंकृत व सम्मानित घोषित किया जाए यह एक तरह से उनका अपमान है। सार्वजनिक रूप से अपमानित व्यक्ति द्वारा किसी का सम्मान कैसे किया जा सकता है? जनता द्वारा वास्तविक रूप से सम्मानित व्यक्तियों द्वारा ऐसे औपचारिक सम्मानों को बहुत बार अस्वीकार किया गया है। मृत व्यक्ति भी जीवित अवस्था में शायद ऐसा ही करता तो मृत्यु के बाद 'सम्मानित' किए जाने को अपने स्वार्थ के लिए दूसरे की मजबूरी का लाभ उठाना ही माना जाएगा। संसद के कक्ष में नेताओं की आदमकद तस्वीरों पर हर वर्ष फूलमालाएँ चढ़ाना व वहीं पर उनके आदर्शों, नीतियों व कार्यक्रमों की धज्जियाँ उड़ाना ढोंगलेपन के अलावा कुछ नहीं है। इससे मृत आत्माएँ अपने को अपमानित ही महसूस करती हैं। यह तथ्य हर किसी का सम्मान करते घूमते नेताओं को समझ लेना चाहिए।

मोरारजी देसाई की मृत्यु पर दो दिन के सार्वजनिक अवकाश के कारण जनता के हर क्षेत्र के व्यक्तियों ने परेशान होकर जैसी तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की है, उनसे भविष्य में ऐसे ही 'सम्मान' के भूखे नेता व्यवस्था में कुछ सकारात्मक परिवर्तन करेंगे, ऐसी केवल अपेक्षा तो की जा सकती है, आशा नहीं।

□□□

26

पेयजल की समस्या : हल केवल कड़े उपाय

"नलों में पाँच दिन के अन्तर से पानी", "जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी मंत्री का घेराव", "जलापूर्ति लाइन गटर लाइन से मिली", "हजारों की तादाद में हैण्डपम्प खराब", "अजमेरवासियों का बीसलपुर योजना का पानी लेने से इन्कार", "भूजल और नीचा गया", "रामगढ़ से जलापूर्ति पूर्ण तरह बंद" जैसे समाचारों से अखबार गर्मी का मौसम प्रारम्भ होने से पहले ही भरने प्रारम्भ हो गए थे। एक लोकतांत्रिक देश की कल्याणकारी कही जाने वाली सरकार के लिए इससे अधिक शर्म की बात दूसरी क्या हो सकती है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के करीब पचास वर्षों के बाद भी 85 प्रतिशत जनसंख्या को शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं है। राजस्थान तो इस दृष्टि से सर्वाधिक दुर्भाग्यशाली राज्यों की गिनती में आता है। जहाँ एक घड़ा पानी पाँच या अधिक रुपए में बिकना अब समाचार बनने वाला तथ्य नहीं रहा है। शासन व प्रशासन की संवेदनहीनता का यह हाल है कि पेयजल में कीड़ों, गंदगी, मल-मूत्र, मिट्टी व अन्य जीवाणुओं की मिलावट के समाचार भी उन्हें बेचैन नहीं करते हैं। हर बार वे आश्वासन देने के अलावा कुछ भी सार्थक नहीं कर पाते हैं, जबकि इस समस्या के निदान के लिए सरकार द्वारा खर्च की जाने वाली मुद्रा प्रति वर्ष असामान्य गति से बढ़ती जा रही है। सरकार अधिक राशि आवंटन को अपनी सफलता व जनता के कल्याण के रूप में प्रदर्शित करती है। इस वर्ष भी करीब साढ़े सात अरब रुपए की राशि पेयजल योजनाओं पर खर्च करने के लिए विधानसभा द्वारा स्वीकृत की गई है, जबकि पानी के लिए विधायकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, संस्थाओं तथा स्वयं पीड़ित जनता द्वारा मचाई जाने वाली

हायतोबा भी उसी रफ्तार मे बढ रही है। केवल पीने के पानी के लिए बरबाद होने वाले मानव श्रम दिवसो, सामाजिक लागत, मानसिक वेदना व आपसी विवादो के साथ ही प्रदर्शनो, हडतालो, रास्ता रोको अभियानो आदि से होने वाले नुकसान का मात्रिक सदर्भ मे अनुमान लगाया जाए तो वह कई अरब रुपए प्रति वर्ष हो सकता है। प्रश्न उठता है इतना सब कुछ करने के बावजूद भी पेयजल समस्या विकराल क्यो होती जा रही है ? क्या समाधान वास्तव मे ही कम होते जा रहे है ? क्या समस्या का कोई हल है ही नही ? इनमे से किसी भी प्रश्न का सीधा व स्पष्ट उत्तर तो नही दिया जा सकता है, लेकिन इतना निश्चित है कि पेयजल योजनाओ का क्रियान्वयन, प्रबन्धन व मूल्याकन सही नीति, पीडितोन्मुखी व राजनैतिक तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्व को आवश्यक बना दिया जाए तो हर एक के पानी के उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है। इसके लिए साथ ही दृढ राजनतिक इच्छाशक्ति, प्रशासनिक निष्पक्षता, कार्य कुशलता तथा समस्या के मानवीय पक्ष पर बल देने की आवश्यकता है।

किसी भी समस्या के निदान के लिए माँग एव आपूर्ति मे समन्वय बैठाना पहली शर्त है। पेयजल समस्या के सम्बन्ध मे हम इसी वास्तविकता को नही समझ पा रहे है। हमे यह मान लेना चाहिए कि भूमिगत जल स्रोत भी असीमित मात्रा मे नही है या इन्हे असीमित मात्रा मे उपलब्ध करवाते रहना मानव के बस की नही है, अर्थात बढती हुई मागो के अनुरूप पूर्ति करने की सोच पूरी तरह अव्यावहारिक है, इसीलिए ऐसे प्रयत्नो की आवश्यकता है, जिनसे पानी के दुरुपयोग या जरूरत से ज्यादा उपयोग को रोका जा सके। हमारे स्वभाव व स्वार्थी दृष्टिकोण को देखते हुए केवल ऐसे उपदेश देने से कुछ होने वाला नही है। इसके लिए तो समाज व सरकार के दृष्टिकोण, कानूनी प्रावधानो व आपूर्ति व्यवस्था मे आधारभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता है। अधिकाश बडे शहरो मे पेयजल समस्या का मूल कारण जलापूर्ति का कम होना नही बल्कि लॉन, कूलर, टब वाले स्नानघरों मे स्नान, निर्माण कार्य, आपूर्ति लाइनो से रिसाव, फालतू बहाव आदि कारण है। इनके सार्थक समाधान के बिना कुछ भी कर लिया जाए, लेकिन पानी के कम दबाव, अल्प अवधि पूर्ति, आपूर्ति शून्यता की समस्या का हल निकाला ही नही जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार जयपुर शहर मे ही पेयजल का अधिक उपयोग

पीने के अलावा अन्य दूसरे कार्यो मे होता है। यह सही है कि इन उद्देश्यो के लिए पानी के उपयोग को रोका तो नही जा सकता है, लेकिन कम अवश्य किया जा सकता है। इसके लिए मकान के 15 प्रतिशत क्षेत्रफल से अधिक का लॉन लगाने की कानूनी मनाई, कंक्रीट की जमीन पर मिट्टी डाल कर ही लॉन लगाने की बाध्यता, कूलर के लिए पेयजल के उपयोग को व्यापारिक श्रेणी मे रखकर अधिक शुल्क की वसूली, जलापूर्ति शुल्क को क्रमागत वृद्धि दर व्यवस्था के अनुरूप बनाने, पेयजल आपूर्ति के समय बिना कारण खुला नल छोडने वालो के विरुद्ध प्रतिसंधात्मक कार्यवाही, चौबीस घटे आपूर्ति व्यवस्था की समाप्ति जैसे कदम उठाना समय की जरूरत समझी जानी चाहिए, क्योंकि जब तक अति आवश्यक कार्यो के लिए भी एक ही शहर में लाखो लोग पानी के लिए तरसते रहें तो दूसरे कुछ हजार व्यक्तियो को इसके विलासितापूर्ण उपयोग का अधिकार देना गलत ही नहीं बल्कि अनैतिक भी है। लॉन की हरियाली से ज्यादा जरूरी गले की प्यास बुझाना है। कूलर की शीतलता उस समाज के लिए निष्ठुरता ही है जहाँ लाखों लोग मेहनत-मजदूरी के बाद पसीने के बदबू को हटाने के लिए दो लोटा पानी को तरसते रहते हैं। जिस बस्ती की झोपडी में आटा गूँथने के लिए दो गिलास पानी नहीं हो वहाँ ही आँगन चमकाने या कार धोने के लिए हजारों गैलन पानी बर्बाद करना सामाजिक अपराध ही है। एक ही व्यक्ति द्वारा सैकडों गैलन पानी से नहाना, एक सामान्य से परिवार द्वारा एक से अधिक नल कनेक्शन लेना, जलदाय विभाग को न्यूनतम शुल्क देकर पानी को सड़क पर बहने के लिए जान-बूझकर या लापरवाही से खुला छोड देना या स्वयं का नलकूप खुदवा कर पानी की बर्बादी करना अब व्यक्तिगत मामला नहीं माना जा सकता है, क्योंकि स्वार्थ या निकम्मेपन पर आधारित ये हरकतें पूरे समाज को परेशान व प्रदूषित करती हैं। इनको रोकने के लिए सामाजिक चेतना के साथ ही कानूनी प्रयत्न करने की भी आवश्यकता है। संवेदनहीन होते समाज में कानून का भय व प्रशासन का रूखा व्यवहार आवश्यक हो गया है।

अब बूस्टर लगाने वालों को समझाने जैसी दयनीयता दिखाने या जलापूर्ति के समय बिजली आपूर्ति बंद करने जैसी बंदर घुडकी दिखाने से काम चलने वाला नहीं है। ऐसा करना तो एक प्रकार से कानून तोडने व समाज कंटकों के सामने आत्मसमर्पण करना ही है। प्रशासन ऐसा क्यों नहीं कर

सकता है कि एक बार की चेतावनी के बाद दुबारा ऐसा ही उल्लंघन करने पर कनेक्शन ही काट दिया जाए व दस गुना शुल्क पर भी उसे दस दिन बाद ही जोड़ा जाए। तब ही "जिसके पाँव न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई" कहावत को सही साबित किया जा सकता है। आश्चर्य है कि जिस जल को राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाता है उसकी बर्बादी को रोकना तो दूर की बात है, बल्कि प्रोत्साहित किया जाता है। निजी नलकूपों पर नियंत्रण नहीं लगाने का आखिर क्या मतलब है ? अब समय आ गया है कि सरकार ऐसे नलकूपों पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दे। ऐसा करने का साहस वह नहीं जुटा पाती है तो भारी शुल्क का कानून तो बनाना ही जाना चाहिए, साथ ही शुल्क का निर्धारण काम में लिए गए पानी की मात्रा के आधार पर होना चाहिए, क्योंकि ऐसे नलकूपों के कारण भूमिगत जल का स्तर निरन्तर रूप से नीचा होता जा रहा है।

सरकार को यह भी सोचना पड़ेगा कि बड़ी लागत से साफ किए पानी का लॉन की सिंचाई, कूलर व निर्माण कार्य के लिए काम में लिए जाने का सिलसिला कब तक जारी रखा जा सकता है ? ऐसे कार्यों के लिए बिना साफ किए पानी या खारे पानी की आपूर्ति अलग से क्यों नहीं की जा सकती है ? बड़े आवासीय भवनों के लिए नहाने के काम आए पानी को संग्रहीत कर मल-मूत्र बहाने के लिए काम में लेने की व्यवस्था करने को आवश्यक बनाया जा सकता है। भविष्य में मकानों के नक्शे ऐसी व्यवस्था होने पर ही स्वीकृत किए जाने चाहिए। कम से कम जयपुर जैसे बड़े व पेयजल संकट वाले शहरों में तो स्वीमिंग पूल बनाने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए, जिनमें कुछ ही व्यक्तियों के लिए हजारों की प्यास बुझा सकने वाला पानी बर्बाद कर दिया जाता है। ऊपरी तौर पर ऐसे सुझाव कुछ कड़े लग सकते हैं, लेकिन यह निश्चित है कि वर्तमान में ऐसा नहीं किया गया तो भविष्य में और भी कड़े कदम उठाना हमारी मजबूरी हो सकती है।

❑❑❑

27

बढ़ती आवास समस्या : आखिर हल क्या ?

राजस्थान की शेखावत सरकार ने पिछले वर्षों मे परिवहन, चिकित्सा व कला जैसे क्षेत्रो में भी नीति की घोषणाएँ की है, लेकिन पता नही जिस राज्य मे जनसंख्या का अधिकांश भाग अपने घर की हसरत जीवनभर पूरी नहीं कर पाता हो और आवास जीवन की सबसे बडी समस्या हो वहाँ किसी नीति की बात जन संवेदनाओ को समझने वाले शासन प्रमुख के दिमाग में क्यो नही आती है। इस विकट समस्या के हल के लिए मकान निर्माण, किराया कानून, कच्ची बस्ती निवासियों के अन्यत्र पुनर्वास, गाँवों से पलायन व स्लम्प विस्तार पर रोक जैसे विषयो पर एक साथ व्यावहारिक दृष्टि से सोचने की जरूरत है। राज्य में विशेष रूप से जयपुर जैसे बडे शहरों मे जनसंख्या जितनी तेज गति से बढ रही है आवास समस्या भी उतनी ही विकराल होती जा रही है, जिसका समाधान सरकार, सहकारी समितियाँ व समाज मिलजुल कर ही कर सकते हैं।

वर्तमान में राजस्थान आवासन मंडल इस कार्य में लगी सबसे बडी संस्था है, जिसने अपनी वर्ष 1970 में स्थापना से लेकर जुबली वर्ष 1995 तक 1,37,466 मकानों के निर्माण का कार्य हाथ में लेकर 43 शहरों व कस्बों की 52 बस्तियों में 1,29914 मकान बनाए व 107829 मकान आवंटित किए हैं, जबकि दूसरी ओर स्थिति यह है कि सहकारी समितियों ने पिछले वर्षों में कितने भूखण्ड बेचे हैं, इसका हिसाब लगाया जाना ही मुश्किल है, फिर भी मकान् पिपासुओं की भूख व रात को छत के नीचे सोने की जगह ढूंढने वालों की संख्या प्रति वर्ष लाखों में बढती जा रही है। स्वाभाविक प्रश्न यह उठता ही है कि आखिर ऐसा विरोधाभास क्यों ? उत्तर स्पष्ट है सरकार की

सोच व योजनाएँ व्यवहारवादी नहीं है।

राजस्थान आवासन मंडल के सम्बन्ध में ही निर्धारित अवधि में आवंटन के प्रभाव मूल्य में तेजी से वृद्धि, निर्माण की घटिया किस्म, आकार में निरन्तर रूप से होती कमी, बस्तियों में चिकित्सालय, विद्यालय, खेल के मैदान जैसी आवश्यक सुविधाओं का अभाव, हिसाब की अनुपलब्धि आदि जैसी शिकायतें मकान का पंजीयन करवाने व उन्हें प्राप्त करने वालों की ओर से आती रहती है, जिनका समाधान किसी भी रूप में होता नजर नहीं आता है। पिछले दिनों भारतीय प्रशासनिक सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी राम मोहन की अध्यक्षता में मण्डल के कार्यों में सुधार हेतु सुझाव देने के लिए प्रशासनिक सुधार समिति का गठन किया जाना और उसके पूर्व विधायकों की समिति इसी उद्देश्य हेतु बनाना निश्चय ही सकारात्मक कदम है, लेकिन वास्तविक सुधार व कल्याणकारी परिणाम तो ऐसे सुझावों को व्यावहारिक रूप देने में ही आ सकते हैं। किस्त भुगतान व्यवस्था लागू करना आवश्यक ही नहीं बल्कि मंडल स्थापना का मूल उद्देश्य है। जिस गरीब की सहायता के लिए आवासन मंडल की स्थापना की गई थी वह तो वर्तमान में किराया क्रय पद्धति के आधार पर भी मकान प्राप्ति की स्थिति में नहीं है, क्योंकि मकान का कब्जा लेने से पूर्व उसे करीब पचास प्रतिशत राशि का भुगतान करना पड़ता है, जो किसी हालत में बीस प्रतिशत से ज्यादा नहीं हो सकती है। मंडल की व्यवस्था में ऐसे कुछ परिवर्तन किए जाने अब अति आवश्यक हो गए हैं, जिससे निर्माण लागत को न्यूनतम किया जा सके। इसके लिए पूर्व निर्धारित अवधि में ही निर्माण कार्य को पूर्ण करने, ऐसा नहीं होने पर सम्बन्धित अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराने, आवास विकास संस्थान की अनावश्यक भूमिका को समाप्त करने, केवल मजदूरी को ठेके पर देने, आधुनिक तकनीक व श्रेष्ठ स्थानापन्न निर्माण सामग्री का उपयोग करने व रखरखाव लागत को न्यून करने की आवश्यकता है। एक अनुमान के अनुसार आवास विकास संस्थान की मध्यस्थता के कारण निर्माण लागत में 15 प्रतिशत की वृद्धि बिना वजह हो जाती है। भूमि जो कि आमतौर पर मंडल द्वारा कौड़ी के भाव अवाप्त की जाती है, आवेदनकर्ता को हजारों रुपए वर्गगज के बाजार भाव देना तर्क

पूर्ण तो ठहराया जा सकता है, लेकिन उचित नहीं, क्योंकि मंडल कोई व्यावसायिक संस्था नहीं है।

मंडल व्यवस्था में प्रशासनिक परिवर्तन करके भी खर्चों में बहुत कमी की जा सकती है। इसके लिए उच्च पदों में कमी, कर्मचारियों के एक-दूसरे शहर में बड़े पैमाने पर तबादले, प्रत्येक कर्मचारी के लिए न्यूनतम कार्य का निर्धारण व कार्य समय में उपस्थिति की अनिवार्यता, एक छतीय प्रशासनिक व्यवस्था, कर्मचारियों की एक ही यूनियन को मान्यता, कर्मचारियों के लिए सजीव प्रोत्साहन नीति का क्रियान्वयन, कम्प्यूटर व्यवस्था जैसे कदम उठाये जाने अपरिहार्य हो गये हैं। आवंटन के तुरन्त बाद से मकान के मालिक बने व्यक्ति को दीवारों के गिरते प्लास्टर, नलों की फिटिंग से रिसते पानी, धँसते आँगन, छत के कभी भी टूटने वाली पट्टी, निम्न स्तरीय व कमजोर बिजली फिटिंग के कारण रोज-रोज की असुविधा, बरसात में टपकते पानी की समस्याओं को देखते हुए कुछ निर्धारित समय के लिए गारन्टी दिए जाने की कानूनी व्यवस्था करना आवश्यक हो गया है। कॉलोनी में सभी नागरिक व आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करवा दिए जाने की भी कुछ अधिकतम सीमा के लिए कानूनी बंधन से इनकार नहीं किया जा सकता है।

राज्य में कच्ची बस्तियों व स्लम्प्स में रहने वालों की संख्या करोड़ों में है जहाँ अधिकांश लोग रहते हैं, जहाँ पीने के पानी, शौच व मूत्र त्याग, रोशनी व सोने तक की न्यूनतम सुविधाएँ भी नहीं हैं। यह सही है कि राजनैतिक ही नहीं बल्कि मानवीय कारणों से भी कच्ची बस्ती व स्लम्प हटाओ कार्यक्रम को संवेदनहीन तरीके से लागू नहीं किया जा सकता है, क्योंकि किसी स्थान का सौन्दर्यीकरण मानव के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा से बढ़कर नहीं हो सकता है। इसके लिए ऐसे व्यक्तियों के लिए अति अल्प मूल्य पर भूमि निर्माण के लिए नाममात्र की ब्याज दर पर राशि व अधिकतम सम्भव अनुदान उपलब्ध करवाने की जरूरत है। चाहे इसके लिए पैसा सरकारी खजाने, केन्द्रीय सरकार या विश्व बैंक कहीं से भी प्राप्त करना पड़े। ऐसे शहरों के सौन्दर्यीकरण, सड़कों के बेवजह डामरीकरण, चौराहों के विस्तारीकरण, संगीत फव्वारों, अप्पू घरों, पाँच सितारा होटलों के निर्माण को सराहा नहीं जा सकता है।

सरकार का दायित्व तो सर्वाधिक गरीब, पिछडे व पीडितो के लिए ही सबसे पहले व अधिक बनता है। उनका गरीब होना दुर्भाग्य तो हो सकता है, लेकिन गुनाह नही। उनकी इस स्थिति के लिए सरकार, समाज व व्यवस्था भी तो एक सीमा तक जिम्मेदार है, तो फिर इस दायित्व से क्या कहकर बचा जा सकता है?

अत्यधिक शहरीकरण जिसे आर्थिक विकास का मापदण्ड माना जाता है भी आवास समस्या के लिए बहुत अधिक जिम्मेदार है, जिसका हल ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात, सदेशवाहन, मनोरजन, चिकित्सा, शिक्षा जैसी सेवाओ का सस्ते व सुलभ रूप में उपलब्ध कराने, कृषि उद्योग व व्यापार की सम्भावाएँ बढाने, सरकारी व अर्द्धसरकारी कार्यालयो को हस्तान्तरित करने व क्रय-विक्रय की गतिविधियो का विस्तार करने मे ही हो सकता है। नही तो "जसे-जैसे दवा की मर्ज बढता ही गया" की कहावत ही चरितार्थ होती है। यह विरोधाभास निश्चय ही दुखदायी है कि राजस्थान के अधिकाश कस्बों मे होटलनुमा हवेलियाँ वियावान पड़ी है व अधिकाश बडे शहर जनसख्या के दबाव के कारण बर्बाद हो रहे हैं। इतना ही नही प्रत्येक शिक्षित, राजनीतिज्ञ, सरकारी अधिकारी, व्यापारी, सेवानिवृत्त कर्मचारी हर हालत मे शहरों में ही निवास करना चाह रहा है। हर एक को जीवन का आनन्द तो शहर मे ही लगता है। कर्मचारियो की अप-टाउन की बीमारी जो सरकार की ढिलाई के कारण भयानक रूप से बढ रही है, ने भी आवास समस्या को विकराल बनाने मे बहुत योगदान दिया है। इन सब पर काबू पाने बिना आवास समस्या के हल के बारे मे सोचा नहीं जा सकता है।

किराया नियत्रण कानून जो कि किरायेदार के पक्ष मे बहुत झुका हुआ है का ही परिणाम है क्योकि शहरो मे भी लोग मकान खाली होने पर भी किराये पर उठाने से परहेज करने लगे है, क्योकि पगडी लिए बिना बहुत ही कम किरायेदार मकान खाली करते है व वह पगडी अधिकाश मामलों में कुल चुकाये किराये से भी अधिक होती है। आवास समस्या के हल के लिए समय का तकाजा यही है कि किराया नियत्रण कानून मे आवश्यक सशोधन कर इसे व्यावहारिक बनाया जाए। इसके लिए प्रति वर्ष स्वत किराया वृद्धि के न्यूनतम

प्रतिशत का कानूनी निर्धारण, निर्धारित समयावधि मे मकान मालिक की जरूरत पर खाली करवाने के अधिकार, मकान मालिक की सेवानिवृत्ति पर चाहने पर खाली करने की अनिवार्य व्यवस्था, मकान मालिक व किरायेदार के झगडो को उपभोक्ता न्यायालयों की ही तरह समयबद्ध रूप से निबटाने, स्वय के मकान की स्थिति मे किराये के मकान को स्वत खाली करने की अनिवार्यता, आवास योग्य मकान के व्यापारिक उपयोग पर पूर्ण निषेध जैसे प्रावधान करना जरूरी हो गया है।

निष्कर्ष यही है कि आवास समस्या के व्यावहारिक हल के लिए सरकार द्वारा नीति की घोषणा करना जरूरी हो गया है, जिसमे मकानो के तेजी से निर्माण के साथ ही उपलब्ध मकान किसी भी हालत मे खाली नहीं रह सके।

□□□

28

अनियमितताओं का विस्तार : कितना दोषी सरकारी व्यवहार

भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी, मिलावट, धर्मान्धता, क्षेत्रीयता, तस्करी करचोरी से लेकर आतंकवाद, पृथक्तावाद व माफियावाद की बुराइयाँ दिन-प्रतिदिन बहुत तेज गति से बढती जा रही है, जबकि हर समाज सुधारक स्वैच्छिक सगठन, राजनैतिक दल व सरकार द्वारा इनके विरुद्ध दिये जाने वाले वक्तव्यो, घोषित कार्यक्रमो व बनाए जाने वाले कानूनो की गति भी उससे अधिक अनुपात में बढी है, बल्कि विगत मे कई सरकारें इसी मुद्दे को लेकर बनी व बिगडी है व राजनीतिबाजो ने शिखर से लेकर धरातल तक को छुआ है। वी पी सिह इसी मुद्दे के सहारे सत्ता के शीर्ष तक पहुँचे, राजीव गाधी ने दलालो की समाप्ति के नारे को देकर वाह-वाही लूटी व लाइसेन्स राज की समाप्ति की घोषणा कर पी वी नरसिह राव भी ऐसी प्रसिद्धि पाने मे सफल हुए। प्रश्न उठता है इस सबके बावजूद भी यह सब बुराइया हमारे जीवन का अग व रोजमर्रा की विषय वस्तु बन क्यो गई है ? इसके लिए आम जनता मे गिरते नैतिक मूल्यो, धार्मिक आस्थाओ तथा धन, वैभव, भोग विलास व भौतिकवादी सोच को भले ही दोषी ठहराया जाए, लेकिन सबसे बडा कारण राजनीतिबाज व सरकार ही है। यह निष्पक्ष व विस्तृत विश्लेषण के बाद सही सिद्ध होता है।

शेषन साहब को चाहे कितना ही सनकी, हठी व प्रचार का भूखा बताया जाए लेकिन उनका यह कथन सत्य के बहुत ही करीब है कि चुनावो मे धन व भुजबल का अत्यधिक दुरुपयोग ही ऐसी अनेक बुराइयो की जड है।

दोषपूर्ण कानूनों के कारण ही हत्या, बलात्कार, डकैती, तस्करी ही नहीं वल्कि देशद्रोह, सरकार विरोधी षड्यन्त्र, जासूसी, सामूहिक नरसहार, साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने के अपराधी भी चुनाव लडकर विजयी ही नही हो जाते, वल्कि मन्त्री पद पाकर सार्वजनिक सम्मान, कडी सुरक्षा व सरकारी खजाने को लूटने के अधिकारी वन जाते है। जिन व्यक्तियो को वीच चोराहे पर फासी की सजा मिलनी चाहिए उनको कानून वनाने का अधिकार मिल जाता हे। इतना ही नहीं जिन व्यक्तियों के कारण कानून मजवूर, शासन व्यवस्था कलंकित, सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त व अर्थ व्यवस्था चौपट हो जाए उन्ही की रक्षा की जिम्मेदारी सरकार को लेनी पडती है। तव ऐसे अपराधियों, समाज कंटकों व षड्यंत्रकारियों को वाना वदलते ही उद्‌घाटन करने, उपदेश देने, लालवत्ती वाली गाडी में चलने, मशीनगन धारी कमाण्डो रखने का अधिकार मिल जाए तो कौन अपराधी वडा अपराधी नहीं वनना चाहेगा। यह शायद भारत देश महान ही है, जहां महा अपराधियों को महिमा मंडित किया जाता है। तव ही तो पंजाव व कश्मीर के लक्खी जिनके सर पर लाखों रुपयों का ईनाम घोषित हो, आतंकवादियों, देश के कानून व संविधान को नहीं मानने वाले पृथकतावादियों, हिंसा व तांडव नृत्य करने वाले डकैतों व कुख्यात तस्करों को समारोहों में माफी दी जाती है तथा जीवन की सुरक्षा व आजीविका की व्यवस्था की जाती है। सरकार की ऐसी रीति-नीति के कारण ही चारों ओर अपराध वढ रहे हैं। इतना ही नहीं कुख्यात अपराधी समर्पण कर अपनी सुरक्षा नहीं कर पाने का उलाहना सरकार को देने का अधिकार पा जाते हैं। चोरों द्वारा कोतवाल की ऐसी दुर्दशा तो शायद संसार के किसी भी देश में नहीं होती है।

यह तथ्य किसी से छिपा हुआ नहीं है कि देश में जितने भी भूमि, शराव, नशीले पदार्थ, देह व्यापार व तस्करी के गिरोहों का अस्तित्व है उनको संरक्षण राजनीतिवाजों, पुलिस अधिकारियों व सत्ताधारियों का ही है। वास्तव में लोहेवाला, मावेवाला, हर्षद मेहता या दाऊद तो उनके मोहरे हैं। यदि हम इस जयपुर का ही उदाहरण दें तो क्या यह तथ्य किसी पुलिस व प्रशानिक अधिकारी तथा राजनीतिवाजों से छिपा हुआ है कि यहाँ पिछले पन्द्रह-बीस

वर्षो से समाजकटको, लठैतो व प्रभावशाली व्यक्तियो की मिलीभगत से सरकारी भूमि हडपने, मकान-दुकान खाली करवाने, जमीन कम मूल्य पर बेचने को मजबूर करने, गैर कानूनी रूप से व्यापारिक परिसर बनाने का धधा फलता-फूलता रहा है। सैकडो सडक छाप व्यक्ति यकायक करोडपति बन बैठे है। वास्तविकता तो यह है कि भूमाफियो व राजनीतिबाजो तथा पुलिस अधिकारियो का तो चोली-दामन का साथ है। नही तो महाराष्ट्र का एक सामान्य अधिकारी भावी प्रधानमत्री की नाक मे दम नही कर सकता था। एक प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि हर अपराधी के पापो का घडा लबालब भर जाने के बाद ही उसका पता क्यो चलता है। कारण बिल्कुल स्पष्ट है, सरक्षित अपराधी जब सरक्षणकर्ता को ही आँखे दिखाने लगता है या अपराध विश्व के नियमो का भी पालन करना बद कर देता है तो बाध्य होकर सरक्षणकर्ता राजनीतिबाजो या अधिकारी को उसे औकात दिखाने के लिए कुछ समय के लिए ऐसी कठोर कार्रवाई करनी पडती है। जयपुर मे भूमाफिया कहे जाने वाले लोहेवाले के साथ भी ऐसा ही हो चुका है।

भारत मे आतकवाद व पृथकतावाद के रूप मे जो भयकर समस्या उभरी है उसके अत के लिए हम चाहे कितने ही प्रशासनिक व सैनिक उपाय अपनाएँ लेकिन उनके लिए वास्तविक दोषी राजनीति की गदगी ही है। ससार का स्वर्ग कहे जाने वाले क्षेत्र के नागरिको के नारकीय जीवन, अत्यधिक गरीबी, बेरोजगारी व अशिक्षा के लिए दोषी कौन है? पजाब मे भिण्डरावाले को हवा किसने दी? कश्मीर मे जनता से पूरी तरह कटे रहने वाले नेताओ को अनावश्यक महत्व कौन दे रहा है? इन प्रान्तो मे जिनके विरुद्ध देशद्रोह, बलवो व सैकडो हत्याओ के मुकदमे स्वय सरकार ने चलाए व न्यायालयो ने सजा सुनाई उन्हे राजनैतिक निर्णयो के आधार पर छोड देना अपराध प्रवृत्ति को बढावा देना ही तो है। उनसे कोई पूछे कि क्या तुच्छ राजनैतिक हित राष्ट्र हित से भी बडा हो गया। सरकार के ऐसे स्वार्थी व भीरू निर्णयो से अपराधियो के हौसले बुलन्द ही होते है। कुख्यात डकैतो को राजनैतिक लाभ के लिए आत्मसमर्पण करवाना, उनकी सुरक्षा का दायित्व लेना, उन्हे खेती योग्य जमीन दिलवाना, चल रहे मुकदमो को उठा लेना, सामाजिक सुधार का नही बल्कि

समर्पण का प्रभाव है। इससे सरकार की सकारात्मकता का नही बल्कि निकम्मेपन का ही पता चलता है, जिससे अपराधी सुधरते नहीं है बल्कि उनकी सख्या बढ़ती ही है।

सरकार काली कमाई वालो के लिए समय-समय पर स्वैच्छिक घोषणाएँ घोषित कर, विशिष्ट अवसरों पर कैदियो को रिहा कर, आतकवादियो के लिए आत्मसमर्पण समारोह आयोजित कर, बिना सुनवाई के वर्षो आरोपियो को बद रख, *साम्प्रदायिक दगो मे पुलिस मुठभेड मे मरे व्यक्तियो के परिजनो* के लिए मुआवजा घोषित कर, कुख्यात बदियो को बिना शर्त सामूहिक रूप से रिहा कर, अतिक्रमणकारियो व अवैध रूप से गृह निर्माण करने वालो के नियमितिकरण के लिए शिविर लगाकर, कच्ची बस्तियो मे पानी व बिजली के कनेक्शन देने हेतु समारोह आयोजित कर, पिछला गृह या सम्पत्ति कर चुकाने के लिए कर में छूट दिए जाने की घोषणाएँ कर अनियमितताओ को प्रोत्साहित नहीं तो क्या करती है ? अनियमितता करने वालों को लताडने के स्थान पर पुचकारना, महिमा मंडित करना तथा राजनैतिक संरक्षण देना ऐसी प्रवृत्तियो के विस्तार में सहयोग देना ही है।

सरकार प्रत्यक्षत भी भ्रष्टाचार विस्तार मे सहयोग करती है। टेलीफोन सलाहकार समितियों में अशिक्षित व टेलीफोन का उपयोग तक नहीं जानने वालों को सदस्य बनाना, अधिकांशत राजनीति में लिप्त व्यक्तियों को ही आकाशवाणी, दूरदर्शन सलाहकार समितियों में रखना व गैस कनेक्शन बडी मात्रा में आवंटित करना एवं विक्रय की स्थिति में कोई कार्रवाई नहीं करना भ्रष्ट गतिविधियों को बढावा देना नहीं तोऔर क्या है ? बोफोर्स, प्रतिभूति, चीनी जैसे जग-जाहिर घोटालों को जाँच समितियों के हवाले कर, प्रधानमंत्रियों तक के हत्यारों को मुकदमेबाजी के बहाने लम्बे समय तक जिन्दा रखना, *उनको शहीद व कौम के हीरो के रूप में* प्रतिष्ठित करने वालों को सहन करना व अति विशिष्ट व्यक्तियों जैसा व्यवहार करना अन्य लोगों को ऐसे ही कार्यों के लिए उत्साहित करना जैसा ही है। राजनैतिक दलों में घुसपैठ कर चुके गुंडों, समाजकंटकों व आदतन अपराधियों को बात-बात पर हड़ताल, बंद, धरनों व घेराव के नाम पर आम जनता को परेशान करने की छूट देना कानून

का मजाक उड़ाना ही है।

निष्कर्ष यह है लोकतांत्रिक व्यवस्था के बहाने जब तक स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता, दलों के नाम पर गिरोहों, समाज सुधारकों के नाम पर समाजभक्षकों, जन सेवकों के नाम पर जान लेवकों, न्याय के नाम पर अन्याय को व सबसे महत्वपूर्ण राजनेताओं के नाम पर राजनीतिबाजों को सहन किया जाता रहेगा तब तक किसी भी सुधार की आशा नहीं की जा सकती है।

□□□

29

आरक्षण : क्यों है समस्या, क्या है हल

प्रजातान्त्रिक सरकार का अंतिम लक्ष्य अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण होता है या कहा जाए - होना चाहिए। यह तब ही सम्भव है जब जनकल्याण योजनाओं में पिछडों, पीडितों व गरीबों को प्राथमिकता दी जाए। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर सविधान निर्माताओं ने दस वर्षो के लिए आरक्षण की व्यवस्था की थी, जिसे भारतीय संसद में प्राय. सर्वसम्मति से दस-दस वर्षो के लिए नियमित रूप से बढाया जाता रहा है। आरक्षण को मूल रूप में समाज में व्याप्त असामान्य सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक व आर्थिक असमानता को न्यूनतम करने के लक्ष्य के साधन के रूप में अपनाया गया था। यही कारण है कि हजारों वर्षो से शोषण, उत्पीडन व अमानवीय व्यवहार करने वाली जातियों में इसका विरोध करने की हिम्मत नहीं हो सकी, लेकिन जबसे इसे विशेषत तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक जैसे दक्षिणी सामान्यत अधिकांश राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार ने राजनैतिक हथियार के रूप में काम में लेना शुरु किया है, जन सामान्य में विरोधी प्रतिक्रियाएँ हिंसात्मक तक होने लगी हैं। एक तरफ वे ताकतें हैं जो आरक्षण का प्रतिशत बढाए जाने को लेकर समाज में भयानक विग्रह व अपनी राजनैतिक ताकत बढाने के कुप्रयासों में लगी हैं व दूसरी ओर ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है जो प्रत्येक प्रकार के आरक्षण को समाप्त करना चाहते हैं। ये दोनों ही विचार अतिवादी हैं। प्रश्न उठता है तो क्या समाज को इसी प्रकार बिखरते व बिगडते हुए तथा देश के भविष्य को काला होने देना हमारी मजबूरी बन गई है ? नहीं, लम्बे समय तक ऐसा नहीं हो सकता है। प्रकृति के नियमानुसार भी प्रत्येक विनाश के बाद

सृजन का होना अनिवार्य है। सर्वोच्च न्यायालय के 50 प्रतिशत से अधिक आरक्षण को प्रतिबंधित करने के ऐतिहासिक व तर्कपूर्ण निर्णय के बाद भी तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, बिहार व उत्तर प्रदेश जैसे राज्यो की सरकारे इस सीमा को तोडने पर आमादा है। उससे लगता यही है कि पूर्ण विनाश की स्थिति अभी आना बाकी है।

सैद्धान्तिक व प्राकृतिक न्याय की दृष्टि से तो इस तर्क का समर्थन किया जा सकता है कि जिन जातियो व वर्गो को पिछले हजारो सालो मे जितना व जिस प्रकार अपमानित, उपेक्षित व पीडित किया गया है उसको ध्यान मे रखते हुए तो वर्तमान नीति को सैकडो सालो तक जारी ही नही बल्कि बढाने की आवश्यकता है। ऐसा करने का उद्देश्य केवल केन्द्र की काग्रेस सरकार के सामने 'इधर पडो तो कुआँ, उधर पडो तो खाई' की सुनियोजित चाल के अन्तर्गत दुविधापूर्ण स्थिति पैदा करना ही है। शर्मनाक स्थिति तो यह है कि काग्रेस भी समाज पर पडने वाले व्यापक प्रभावो की चिन्ता किए बिना केवल वोट के लिए समर्पण करती प्रतीत हो रही है। आश्चर्य है काशीराम तो पिछडो के उग्रवाद को हवा देने के लिए 85 प्रतिशत तक आरक्षण किए जाने की असम्भव माँग रख रहे है। मुलायम सिंह तो इनसे एक कदम आगे बढते हुए उत्तराखण्ड मे दो प्रतिशत व्यक्तियो के लिए बीस प्रतिशत से अधिक आरक्षण दिए जाने की बात पर अडे हुए है। उन्हे अपने राजनैतिक लाभ के लालच मे तर्क, अनुग्रह, सत्याग्रह व हिंसा किसी की भी भाषा समझ मे नही आ रही है।

प्रश्न उठता है कि आरक्षण की इतनी बढ-चढ कर माँग करने वाले क्या वास्तव मे ही सामाजिक न्याय व समानता के लक्ष्य के प्रति समर्पित है? बिना किसी लाग-लपेट के इसका उत्तर है - नही। ऐसा करके वे आरक्षित वर्ग मे एक छोटे से उच्च वर्ग को ही लाभ पहुँचाना चाहते है, तभी तो वे आरक्षण की गगा मे बहुत अधिक नहा चुके व्यक्तियो के लिए ही लड रहे है। वे इस तर्क को जानबूझ कर स्वीकार नही करते है कि क्रीमीलेयर वालो को इसका लाभ मिलना बद हो जाए, जिससे बाकी बचे अधिक लाभ प्राप्त कर सके व पदोन्नति मे इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाए। उनका तर्क देखिये कि जिस पिता की पाँचो सतान भारतीय प्रशासनिक सेवा मे हो उसके

पोतों को भी यह लाभ मिलता रहे अर्थात सर्वाधिक पिछडों को लाभ से वंचित कर दिया जाए। बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव का कुतर्क देखिये - वे कहते हैं, "अभी तो दूध ही पूरा नहीं मिला है तो क्रीम की बात कहाँ से आ गई तथा भारतीय संविधान मे ऐसे वर्ग की कोई व्याख्या नहीं है।" आरक्षण के समर्थक तो सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत प्रावधानो वाला संशोधन कर उसे नवें अनुच्छेद में डलवाना चाहते हैं, जिससे उसे न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से ही दूर रखा जा सके। यह तो संविधान के मूल ढाँचे के साथ छेडछाड करना व उसकी आत्मा को आहत करना होगा। लगता है सत्तालोलुप राजनीतिवाज यह भी करके रहेगे। उन्हे इन्तजार केवल उपयुक्त समय का ही है।

आरक्षण के मुद्दे पर वार-वार होने वाली हडतालों, वंद व विवाद को तर्कपूर्ण वना कर ही कम किया जा सकता है। सर्वप्रथम तो सीताराम केसरी के निजी क्षेत्र में भी आरक्षण लागू करने के विचार को तुरन्त दफनाने की आवश्यकता है, जिससे सात अगस्त, 1990 को मंडल कमीशन को लागू करने की घोषणा के बाद जैसी स्थिति पुन उत्पन्न न हो। वैसे तो केसरी की यह घोषणा भी राजनीति से ही प्रेरित थी, जो उन्हीं की सरकार की उदारीकरण की नीति के विल्कुल विपरीत थी। उन्हे वास्तव में सविधान में ऐसे परिवर्तन करवाने की आवश्यकता है, जिससे व्यक्ति की पारिवारिक आर्थिक स्थिति को आरक्षण का लाभ देने व न देने का आधार वनाया जा सके अर्थात गरीवी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था हो सके व एक निर्धारित आर्थिक स्तर के वाद व्यक्तियों को इस लाभ से स्वत वंचित किया जा सके। करना तो वास्तव में यह भी चाहिए कि जिस पीढी के व्यक्ति को आरक्षण का लाभ मिल गया है उसकी संतान को ऐसे लाभ से वंचित कर अधिक पिछडों व पीडितों के लिए अधिक अवसरों की व्यवस्था की जाए, जिससे उनमें ही वर्ग संघर्ष का खतरा पैदा नहीं हो सके। आरक्षण के उन्मादियों को यह भी समझना चाहिए कि गरीबी से वडी सजा दूसरी नहीं होती है। पेट में भूख का अहसास तो उच्च वर्ग के गरीव को भी उतना ही होता है, तो फिर गरीवतम व्यक्तियों के लिए 10-15 प्रतिशत आरक्षण का विरोध

इतनी अमानवीय सोच क्यों नहीं मानी जानी चाहिए। ऐसा करना वर्तमान संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार सम्भव नहीं है तो उसमें परिवर्तन क्यों नहीं किया जा सकता है ? कुल मिलाकर निष्कर्ष यही है कि आरक्षण के मुद्दे को समस्या बनने से तब ही रोका जा सकता है जब केवल वोटों के लिए इसका इस्तेमाल नहीं किया जाकर सम्पूर्ण प्रश्न पर तटस्थ भाव से सोच कर निर्णय लिए व उसे शक्ति के साथ लागू किया जाए, लेकिन ऐसी आशा केवल अपने लिए राजनीति करने वालों से कैसे की जा सकती है।

□□□